तृतीय अध्याय

स्वातंत्रोत्तर कथा साहित्य में स्त्री संवेदना का विकास: एक सर्वेक्षण

स्वातंत्र्योत्तर महिला कथा लेखन में नारी संवेदना का स्वरूप; विकास के नवीन आयामों का चोला धारण किये दिखाई पड़ता है। स्वतंत्रता के बाद का स्त्री साहित्य मुक्ति का मार्ग खोजती हुई नारी का बड़ी बेबाकी से चित्रण करता है। इस युग की नारी अपने लेखन में उन समस्याओं पर प्रश्न उठाती है जिनपर स्वतंत्रता के पूर्व स्वयं महिला कथाकारों ने चुप्पी साध ली थी। साहित्य की मुख्यधारा के तमाम रचनाकार जहाँ औरत के पक्ष में बात को घुमाकर कहने के आदी हो गये थे वहीं स्वतंत्रता के पूर्व की लेखिकाओं में संकोच का भाव प्रबल था। जो मुद्दे अत्यधिक संवेदनशील होते हैं उन पर पूर्व के साहित्यकार या तो कम बोलते दिखाई देते थे या फिर अश्लीलत्व की भावना से ग्रसित हो जाते थे किन्तु स्वातंत्रोत्तर कथा साहित्य में इन दोनो मान्यताओं का खण्डन हुआ है। आधुनिक युग की औरत बर्दाश्त भी करे और चुप भी रहे की जंजीरों को तोड़ फेंका है। वह अब नारी संवेदना एवं चेतना से जुड़ी उन ग्रन्थियों को तोड़कर अपनी आवाज देने की सफल कोशिश करती नजर आती है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की मानसिकता में कई तब्दीली आई है। आज औरत के ऊपर प्रश्न चिन्ह लगाने का समय नहीं रहा। उसके जीवन से जुड़ी बुनियादी समस्याओं को उजागर करने का वक्त पीछे छूट गया है। अब औरत के मानसिक और वैयक्तिक पक्ष पर अधिक बल दिया जाने लगा है।

पहले नारी को भावात्मक संवेदना के कसौटी पर कसा जाता था किन्तु अब उसका मानदण्ड बौद्धिक संवेदना है। भावात्मक रूप से संवेदित महिला कथाकार संवेदनशील मुद्दों पर भाव के वशीभूत होकर समस्या को उजागर करती थी किन्तु

बौद्धिक संवेदना से प्रेरित कथाकर स्वतंत्रता के बाद के कथा साहित्य में नारी से जुड़े निजी पक्षों पर खुलकर प्रश्न उठाती है और उसका समाधान भी करती है। चाहे वह स्ती के यौन संबंधों को लेकर देह शुचिता का प्रश्न हो, या फिर अपने अस्मिता की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने की तड़प हो। मर्द के पाशविक प्रवृत्ति का शिकार होती औरत का प्रतिक्रियावादी विद्रोह हो या फिर विवाह के बाद पुरुष की प्रताड़ना के प्रति आक्रोश सब पर उसने अपनी असहिमती जताती दिखाई पड़ती है। विवाह पूर्व साथी चयन की स्वतंत्रता, आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने की पहल, मन न मिलने पर संबंध विच्छेद की कवायद सभी बिन्दुओं पर नारी आत्मनिर्भर होने का पाठ पढ़ाती नजर आती है।

स्वातंत्रोत्तर महिला कथा-लेखन जिनमें नारी संवेदना का मुखर रूप दिखाई पड़ता है का प्रारंभ कंचनलता सब्बरवाल' एवं 'रजनी पनिक्कर' से होता है। आगे चलकर ममता कालिया, प्रभाखेतान, मृदुला गर्ग, ऊषाप्रियंवदा, भन्नू भण्डारी, मैत्रेयी पुष्पा, कृष्णा सोबती, राजी सेठ, चित्रा मुद्गल, मधु कांकरिया, चन्द्रबाला, सूर्यबाला, नमिता सिंह, सुधा अरोरा आदि लेखिकाओं ने स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में स्त्री संवेदना के विविध आयामों को उद्घाटित करने में अपना अमूल्य योगदान दिया।

कंचनलता सब्बरवाल जी स्वातंत्रयोत्तर महिला कथा-लेखिकाओं में पहले स्थान पर आती हैं। इन्होंने 'कड़ियाँ टूटी हुई', 'प्यासी धरती सुखे ताल मूर्ख नाम से कहानियाँ' लिखी। सब्बरवाल जी ने अपने कहानियों मे स्त्री पात्रों और उनकी स्थितियों को एक दूसरे के समकक्ष रखकर बिना कुछ कहे ही मुख्य संवेदना को उजागर करने की कला का विकास किया है। दूसरी प्रमुख स्वातंत्र्योत्तर लेखिका रजनी पनिक्कर जी है जिन्होंने 'सिगरेट के टुकड़े' और 'प्रेम चुनरिया बहुरंगी' नामक कहानी संग्रह लिखकर नारी संवेदना की विकास यात्रा को और अधिक सुदृढ बनाया।

स्वतंत्रता के बाद की महिला कथाकारों के लेखन में एक नवीनता दिखाई पड़ती है, वह स्वतंत्रा के पूर्व की महिला कथाकारों की तरह महिलाओं को आंशिक स्वाधीनता स्वीकार्य करने के बजाय पूर्ण स्वाधीनता का समर्थन करती हैं। महिला कथा लेखन के प्रारंभ में नारी संवेदना सुधारोन्मुखी दृष्टि अख्तियार करती आ रही थी किन्तु स्वातंत्योत्तर महिला लेखन स्त्री को शोषण, उत्पीड़न, घर के अन्दर चहारदिवारी में कैद रखने और सहकारिता, समानता का व्यवहार न करके औरत को गुलाम बनाकर रखने की मानसिकता का विरोध करता है। वह मर्दों को अपने ऊपर अनैतिक अधिकार रखने, स्वच्छंद यौनाचार तथा देहवाद की स्वतंत्रता का विरोध करती है। आधुनिक नारी बौध्धिक संवेदना और भावनात्मक संवेदना में संतुलन बिठाकर चलने की पक्षपाती है। वह ऐसी स्वतंत्रता स्थापित करना चाहती है जिसमें औरत और मर्द दोनों का बराबर हिस्सा हो कोई ऐसा कानून हमारे समाज में न लागू पड़े जो औरत और मर्द की स्वतंत्रता, स्वच्छन्दता को दो चश्में से देखने की कोशिश करें। अर्थात जो पुरुष को अधिकार प्राप्त हैं समाज से वही अधिकार स्त्री को भी प्राप्त हों। जिन कार्यों को करने से औरत के ऊपर सवाल उठाया जाता है और उसे चरित्रहीन का अंकपत्र थमाया जाता है वही कार्य यदि मर्द भी करे तो उसके साथ भी वैसा ही व्यवहार होना चाहिए। स्वातंत्र्योत्तर महिला कथा लेखन की संवेदनात्मक नवीनता मुख्य धारा को भी अपनी तरफ आकृष्ट करती है।

'श्रृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी वर्मा लिखती हैं "हमे न किसी की जय चाहिए, न किसी की पराजय, न किसी पर प्रभुता चाहिए न किसी पर प्रभुत्व केवल अपना वह स्थान चाहिए वह स्वतंत्रता चाहिए जिसका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नही है परन्तु जिसके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकते।"[1]

स्वतंत्रता उपरान्त के कथा साहित्य में नारी संवेदना को शिखर पर आसीन करने वाली कुछ प्रमुख लेखिकाओं के कथा साहित्य का वर्णन करना समीचीन जान पड़ता है। उन प्रमुख कथाकारों के कथा साहित्य में जहाँ-जहाँ नारी संवेदना को प्रमुखता से उभारा गया है उनका वर्णन दृष्टव्य है-

प्रमुख महिला कथाकारों के कथा साहित्य में स्त्री संवेदना-

1. कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री संवेदना-

सोबती जी का जन्म 18 फरवरी 1925 पंजाब में हुआ था। राजेन्द्र अवस्थी जी ने जब इनके जन्म के बार में प्रश्न किया तो लेखिका का जवाब ही नारी संवेदना से जुड़े कई राज खोल देते हैं-

"सदियों पुराने अंदाज में यह न पूछिए कि कब और कहाँ हुआ पुछिए यह कि क्यों हुआ ? हम खुद से यही सवाल कई बार पूँछ चुके हैं कि आखिर हम पैदा हुए तो क्यूँ ? अपने हाथों से न कुछ बनाया, न सवारा बस सुबह शाम नास्ते के वक्त घोल-घोलकर पीते रहे।"[2] लेखिका का मंतव्य साफ है कि यदि समाज का आप हिस्सा हो तो जीने का कोई न कोई उद्देश्य होना चाहिए। नारी संवेदना की दृष्टि से मूल्यांकन किया जाय तो लेखिका के कथा साहित्य में स्त्री को निज के प्रति सचेत और समाज के प्रति चैतन्य रहने की कवायद किया गया है।

कृष्णा सोबती की कृतियाँ-

→ **उपन्यास-** जिन्दगीनामा, सूरजमुखी अँधेरे के, यारों के यार, तीन पहाड़, मित्रो मरजानी, डार से बिछड़ी, दिलो-दानिश

→ **कहानी-** ऐ लड़की, बादलों के घेरे, सिक्का बदल गया,

कृष्णा सोबती पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना करती है। लेखिका के दृष्टि में पैतृक मूल्य औरत को उपेक्षित बनाते हैं। रीति-रिवाज एवं बाह्याडंबरों के प्रति कृष्णा जी का विद्रोही रूप सामने आता है। इनके उपन्यासों में स्त्री का स्वर बड़ा तीखा एवं खुला हुआ दिखाई पड़ता है-

मित्रों मरजानी' -

'उपन्यास की 'मित्रों' एक ऐसी नायिका के रूप में अंकित की गई है जो अपनी जरूरतों को दबाती नही है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपनी आवाज बुलंद करती है। मित्रों को न अपने समाज की मान्यताओं की चिंता है न दिखावटी संस्कार की। वह -शरीर की यौन इच्छा को खुलकर प्रकट करती है। जब परिवारीजन उसकी प्रजनन शक्ति पर प्रहार करते हैं तब वह बिना संकोच के पति की नपुंसकता की तरफ इशारा करते हुए कहती है- "सोने सी अपनी देह झूर-झुरकर जला लूँ या गुल गुलजारी देवर की घरवाली की न्याई सुई-सिलाई के पीछे जान खपा लूँ, सच तो यूँ, जेठ जी की दीन-दुनियां बिसरा में मनुक्ख की जात से हँस-खेल लेती हूँ। झूठ यूँ कि खसम का दिया राजपाट छोड़ मैं कोठे पर तो नही जा बैठी ।"[3]

आलोच्य उपन्यास की स्त्री पात मित्रों नारीवादी संवेदना से ओतप्रोत है। वह शोषण एवं अन्याय को चुपचाप सहन नहीं करती। पुरुष की कमजोरी को वह मर्यादा का जामा पहनाने के पक्ष में नहीं रहती। नारी के हित में आने वाले सभी निर्णयों पर उसका स्वतंत्र विचार है किन्तु अर्थलित्सा मित्रों में रंचमात्र भी नही है। उसका परिवार जब आर्थिक संकट से गुजर रहा होता है तब वह बड़ी ही संवेदनशीलता से अपने मायके से लाई हुई पिटार आगे कर देती है। धन लोलुपता को त्यागते हुए कहती है- "यह दमडी दान परवान करो लाला जी! कौन इस नावे के बिना मिलों की बेटी कुँवारी रह जाएगी।"[4]

हिन्दी कथा साहित्य में दैहिक संवेदनाओं को अन्तर्जगत के मर्मोद्घाटन से एकाकार करके देखने की परंपरा' प्राय: नही दिखाई पड़ती लेकिन लेखिका सोबती जी नें मित्रों के माध्यम से इसे खुलकर व्यक्त करती है।

सूरजमुखी अँधेरे के-

कृष्णा जी का यह उपन्यास 1972 में प्रकाशित होता है। प्रस्तुत उपन्यास में नारी की संवेदना पर ऐसा चित्र खीचा गया है जो असहिष्णु पाठक को सहिष्णु बना दे किन्तु उपन्यास के उत्तरार्ध में स्त्री के ऐसे चरित्र का उद्घाटन किया गया है जो बदले के भावना से ग्रसित नारी के दुष्चरित का परिणाम जान पड़ता है। आलोच्य उपन्यास की नायिका का बचपन में बलात्कार हो जाता है किन्तु पारिवारिक और सामाजिक असहिष्णुता की शिकार तानों के तंज से घायल 'रती' हर रोज अपने ऊपर बलात्कार होने जैसी मानसिक पीड़ा महसूस करती है। उसको जिन शब्दो से भाई, बहन, परिवार समाज प्रतिपल घायल करते हैं वे हैं- कलमुँही, तू मर क्यों नहीं गई ? ब्यंग की मार से टूटी रती- "सालों बाद सिर्फ रती है। उसका तीखापन, कड़वाहट सब मर गए हैं। वह फीकी है, एक फीकी औरत। एक लड़की जो लड़की कभी नही थी। एक औरत जो कभी औरत नही थी। जिसकी छाती पर कांटो की बाड़ उग आई थी।"[5]

आलोच्य उपन्यास की नायिका का बचपन में बलात्कार हो जाता है, जिसके कारण वह तथाकथित सभ्य समाज की नजर में अपराधिनी हो जाती है। दोषी कोई और होता है सजा नारी जाति को झेलनी पड़ती है रती की मनोदशा का चित्रण करते हुए एवं 'सूरज मुखी अंधेरे के' उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता को स्पष्ट करते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं- "अंधेरे से उभरता हुआ एक सूर्य पुष्प है, लेकिन मुझे लगता है इसका अर्थ 'अंधेरे में मुरझाए सूरज मुखी होना चाहिए। समाज के अंधेरे में सूरजमुखी के उभरने, खिलने और महकने की गुंजाइश ही कहाँ है ? सूरजमुखी सी

'रती' के साथ बलात्कार उसके जीवन में अंधेरा-ही अंधेरा तो करता है। बलात्कार का अँधेरा सूरजमुखी के चेहरे को सिर्फ काला कर सकता है, ऐसा काला कि जीवनभर धुलता ही नहीं।"[6]

यौन शुचिता जीवन जीने की कला का आवश्यक अंग नही है की आवज बुलंद कर लेखिका रती के माध्यम से जिस औरत की स्वतंत्रता की बात करती है वह स्वतंत्रता औरत को और दलदल में खींच ले जाती है। रती बदले की भावना में आकर अनेक पुरुषों से संबंध बनाती है। एक मानसिक रोगी की तरह जो स्त्री की असंवेदनशील सोच का परिमाण है। कुवृत्ति से पोषित पुरुष बचपन में यौनिक शोषण करता है उस आघात की पीड़ा सहने वाली रती इतनी संवेदन शून्य कैसे हो सकती है? कि एक के बाद एक पुरुष उसके बदले का शिकार होते जा रहे हैं। वह संबंध बनाती और विच्छेद कर लेती किसी के साथ जीवन संगीनी नही बनना चाहती है।

उपन्यास की विषयवस्तु पढ़कर जहाँ जागृति की चिन्गारी उठनी चाहिए थी वहाँ निराशा ही हाथ लगेगी। यदि आलोच्य उपन्यास से नारी में चेतना जागृत हुई तो समाज का विनाश ही होगा जो स्त्री-पुरुष के अंतरसंबंधो से ज्यादा महत्वपूर्ण मुद्दा है।

जिन्दगीनामा की 'महरी' चाची का पति तीन वर्ष में ही भगवान को प्यारा हो जाता है। विधवा महरी चाची अपनी जिन्दगी को अकेले नही बिताना चाहती थी अत: 'गणपत शाह' के साथ उनका स्नेह जुड़ जाता है।

ऐ लड़की-

उपन्यास की अम्मी प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति में संतुलन बिठाकर चलने वाली पात्र है। वह अपनी पुत्री को समझाते हुए कहती हैं "पुरुष हर क्षेत्र में स्त्री से ऊपर है। पुरुष का स्त्री पर अधिकार होना आवश्यक है।"[7] हमारी प्राचीन संस्कृति में

विवाह एक संस्कार है अत: स्त्री के लिए विवाह करना आवश्यक है। शादी के बाद ही एक लड़की माँ और परिवार की सृष्टि करती है। अपनी जवान बेटी को शादी के महत्व को बताते हुए अम्मी तंज कसती है कि- "इतना बताओ कि खुदमुख्तयारी चलाओगी किस पर? तेरी पंक्ति में कोई नही न किसी की माँ, न दादी न नानी भी । लड़की तुम हो वनस्पति, कुश, घास तिनका।"[8] अर्थात् लेकिखाने स्त्री जाति को सीधा संदेश दिया है कि विवाह परंपरागत अवधारणा है। हर स्त्री की पूर्णता पुरुष को पति रूप में स्वीकारना ही है। आलोच्य उपन्यास में लेखिका एक ऐसी स्त्री की सांवेदिक चेतना को उजागर करती है जो स्वतंत्र अस्मिता के लिए चेतानाशील है। जब 'सूसन' की शादी के बारे में सकारात्मक बात अम्मी सुनती हैं तो उसे समझाते हुए कहती हैं. "सूसन शादी के बाद किसी के हाथ का झुनझुना नही बनना। अपनी ताकत बनने की कोशिश करना।"[8]

परंपरा से मिले संस्कार का अनुपालन एवं आधुनिक सोच एवं संवेदना का मणिकांचन प्रयोग इस उपन्यास में हुआ है एक तरफ विवाह करना समाज का पारंपरिक धरोहर है। का, पाठ अम्मी सुसन को पढ़ाती हैं तो दूसरी तरफ अपने-जीवन की चाबी किसी दूसरे के हाथ में न देने की कवायद भी करती हैं। लेखिका कृष्णा सोबती जी प्रस्तुत कृति के माध्यम से नारी के संस्कार एवं अस्तित्व दोनों की रक्षा के प्रति अम्मी को अत्यधिक संवेदनशील एवं क्रियाशील बनाने की सक्त कोशिश की है।

दिलोदानिश

आलोच्य उपन्यास की महिला' पात्र 'छुन्ना' एक विधवा स्त्री है। छुन्ना के स्वजन उसपर अपनो बलात् अंकुश लगाते हैं और उसे विधवा के लिबाश एवं कर्म-काण्ड की मर्यादा का पालन करने हेतु हमेशा ताना देते हैं। छुन्ना इन रूढ़िवादी

मानसिकता से प्रभावित हुए बगैर सोचती है-"अपने से उम्मीद यही की जाती है कि पूजा-ध्यान में दिल लगाएं। व्रत करें, तीर्थ को जाएं। अपने अन्दर- बाहर की तरंगों को शांत कर भक्ति-भाव से विधवा बन जाएं। पहनने ओढ़ने की मुमानियत!... जो हुआ सो अपने हाँथ में न था। सन्यासिनी बन मथुरा में से बैठने से रहे।.... हाँ बच्चों का स्कूल खोल लें।"[9] छुन्ना परंपरा से चले आ रहे दकियानूसी खयालात से खुद को मुक्त कर लेती है और एक शिक्षित महिला का परिचय देती है।

इसी उपन्यास की स्त्री पात्र 'महक' कृपानारायण की दूसरी बीबी बनने के पंक्ति में खड़ी है किन्तु कृपानारायण वकील उसको मौके बेमौके रखेल होने की औकात दिखा देते है। महक प्रताड़ना सहते-सहते अपने सम्मान को खोती जा रही थी अचानक अपमान की वितृष्णा-ने उसके स्त्रीत्व को उजागर कर देता है और वह विद्रोहिणी रूप धारण करते हुए तीखे स्वर में कहती है-" हमारी माँ के जेवर हमें आज शाम तक मिल जाने चाहिए वकील साहिब। कुछ भी हो जेवर पहले और शादी बाद में।"[10] अपने गहने वापस पाकर महक खुश हो जाती है। उसे इसमें औरत की जीत की पहली महकमिलती है। उसका आत्मविश्वास मजबूत हो उठता है। वह सोचती है- "आज से पहले तो हम औरत भी नहीं थे।ओढ़नी थे, अंगिया थे, सलवार थे, ।...जूती अपनी थी और पाँव किसी और को सौंप रखे थे।"[11]

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'दिलोदानिश' में वर्णित महक वकील साहब की दूसरी बीबी है किन्तु बिना किसी वैवाहिक क्रियाकलाप के एवं साक्ष्य के वह रखेल की श्रेणी में गिनी जाती है। सर्वविदित है कि प्राय: दूसरी औरत पुरुष के जीवन में आने से पहली स्त्री का अधिकार लग-भग समाप्त हो जाता है। अर्थात पहली बीबी का संपूर्ण स्थान दूसरी अधिकृत कर लेती है किन्तु प्रस्तुत उपन्यास की स्त्री पात्र महक के पास वकील साहब के साथ विवाह का कोई साक्ष्य नही है अत: वह उपेक्षा और घृणा के नजर से देखी जाती है। रखेल की संज्ञा से नवाजी जाती है। आलोच्य

उपन्यास में कृष्णा सोबती पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था पर प्रहार करते हुए लिखती हैं- "मालिक जो कहें सो ठीक है औरत बोले तो उसे फौरन कायदे-कानून, रस्म-रिवाज, धर्म-शास्त्र, और खानदानी परंपरा, मर्यादा ईज्जत, और मान सम्मान के पाठ पढ़ा दिए जाएंगे, जो हवेली के मर्दों में न जाने कब से संभालकर रखे हुए हैं। पुश्त-दर पुश्त आबाद मर्दों की हवेली में औरतों को गृहस्थी बनाने चलाने को ही ऊपरवाले ने बनाया है। क्या कमाल का बँटवारा है जिसमें मर्दों के हिस्से में आए है महफ़ील, मुजरे, खेल-तमाशे और औरत के हिस्से में बाल-बच्चे, दिन-त्योहार, पूजा-व्रत। औरतों के रोने धोने से क्या कुछ बदलने वाला है।"[12]

स्त्री संवेदना को एक विस्तृत भावभूमि देती कृष्णा सोबती के अन्य उपन्यास एवं कहानियों में स्त्री पितृसत्ता का विरोध और पितृसत्ता के दंश से जूझती अंकित की गई है चाहे 'डार से बिछुड़ी' की पाशों हो या फिर "यारों के यार" की तमन्ना और तमाशा सभी स्त्री पात्र स्व के प्रति संघर्ष करती दिखाई पड़ती हैं। चार बच्चों की माँ बनी पाशों की दुर्दशा देखने से पता चलता है कि कैसे औरत पुरुष की वस्तु मात्र बनकर रह गई है- "द्रोपती खैर मना, इस अच्छे घर पहुँच गई, नही तो बरकत कसाई एक बार नहीं सौ बार तुम्हें बेच खाता। आप मेरे पूजन जोग, मेरे पिता समान, रब के वास्ते मुझे मेरे लाल के पास लौटा दें। यहाँ रही तो मैं मर जाऊँगी मै.... जीती न बचूँगी ।"[13] आलोच्य कृति में 'स्त्री 'बच्चा' पैदा करने की मशीन सी जान पड़ती है। वह घर की चहारदिवारी में घुटन महसूस करती है। कृष्णा सोबती की अन्य कहानियों में भी नारी पितृसत्ता के अनैतिक अधिकारों से स्वतंत्रता चाहती है। 'सिक्का बदल गया', 'बादलों के घेरे' आदि कहानियों में भी औरत संघर्ष करती दिखाई पड़ती है।

2. मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में स्त्री संवेदना

मन्नू भण्डारी जी ऐसी महिला कथाकार हैं जिनके यहाँ नारी कथा साहित्य में अपने आप को अपनी ही दृष्टि से देखती है और फिर वस्तु से व्यक्ति और व्यक्ति से व्यक्तित्व बनती है। लेखिका का जन्म-1951 में मध्य-प्रदेश के मानपुरा गाँव में हुआ। पैतृक संस्कार एवं नारी के प्रति सदासयता का भाव इनमें कूट-कूटकर भरा है। जिसका प्रभाव इनके साहित्य पर भी प्रबल रूप से पड़ा। लेखिका के कथा-साहित्य में नारी हृदय के अनकहे मूक सच को पूरी सावधानी और ईमानदारी से अभिव्यक्त किया गया है। इनकी कहानियों में आत्मा के विस्तार के साथ-साथ भावात्मक एवं बौध्धिक संवेदना का फैलाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

रचनाए- उपन्यास- (I) महाभोज (II) आपका बंटी (III) एक इंच मुस्कान

कहानी–(I) एक प्लेट शैलाब (II) मैं हार गई

(III) तीन निगाहों की एक तस्वीर (IV) यही सच है

(v) नायक खलनायक विदूषक

स्त्री मुक्ति की अवधारणा

भन्नू भण्डारी की सारी चेतना अपने परिवेश पर केन्द्रीत रही है। अपने आस-पास रहने वाली संवेदनशील नारियों की समस्याओं, बेबसी, पितृ- सत्ता से मुक्ति पाने की इच्छा को कथा साहित्य में उभारने का कार्य इस लेखिका ने बखूबी ढंग से किया है। वास्तव में पुरुष की सत्ता से प्रताड़ित औरत को शिक्षा, रोजगार एवं सामाजिक स्वतंत्रता दिलाने में लेखिका ज्यादा संवेदनशील दिखाई पड़ती है। इनके लेखन में

शिक्षित मध्य-वर्गीय स्त्री, परंपरा एवं आधुनिकता के विचारधारा में त्रिशंकु की भांति लटकती रहती है।

लेखिका के प्रारंभिक कथा साहित्य में स्त्री को आधुनिकता के साथ संघर्ष करते दिखाया गया है किन्तु जब बात व्यक्तिगत धरातल पर अंकित होती है तब परंपरा का दामन थामने में लेखिका ज्यादा तत्पर दिखाई पड़ती है।

"अपने स्त्री-पात्रों के माध्यम से, मन्नू जी "नारी मुक्ति आन्दोलन उछालना तो नही चाहती थी, परंतु व्यक्ति चिन्तन में रत स्ती मुक्ति आन्दोलन के लिए भूमि अवश्य ही प्रशस्त करना चाहती थी। मन्नू जी ने ऐसी स्त्रियों को कहानी में पात्र बनाया है, जो अपने में स्थित व्यक्ति-सत्य को आत्मसात् करने के लिए दुनिया की फिक्र छोड़कर सिर्फ अपनी फिक्र करती है। जो अपने व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए कोई न कोई निर्णय ले लेती है जो नितांत उनका अपना होता है।"[14]

आर्थिक आत्मर्निभरता के प्रति संवेदनशील स्त्री -

भौतिकतावादी इस समाज में सभी समस्याओं की जड़ आर्थिक विपन्नता की स्थिति है। जहाँ आर्थिक अभाव है वहाँ पारिवारिक कलह, स्त्री-शोषण, वांछित इच्छाओं का दमन, बहुतायत मात्रा में होता है। लेखिका ने नारी को शिक्षित करने एवं आर्थिक रूप से समृद्ध होने में ही नारी मुक्ति का केन्द्र बिन्दु माना है। लेखिका के कथा साहित्य की समीक्षा करते हुए गुलाब राय हाडे का मत है- "भारतीय नारी तथा उसकी जिंदगी से जोंक की तरह चिपकी हुई अर्थ प्राप्ति की समस्या पर मन्नूजी ने अपनी कुछ कहानियों को आधार बनाया जिसमें क्षय, नशा, रानी माँ का चबूतरा, शायद, एखाने आकाश नाई, घुटन आदि कहानियाँ हैं। शेष अधिकांश कहानियों में बुनियादी समस्या स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व विकास की है या फिर स्वच्छंद तथा उन्मुक्त जीवन के साथ-साथ शील सुरक्षा या रूढ़ियों से, संस्कारों से मुक्ति पानी की है।"[15]

लेखिका अपने सभी स्त्री पात्रों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के लिए पुरुष पात्रों से संवाद स्थापित कराती है। भारतीय समाज में आज भी कुछ लोग औरतों को नौकरी कराने के पक्ष में नहीं हैं। पुरुष प्रधान समाज औरत का बाहर निकलना अपनी मर्यादा का अवहेलना होना मान बैठा है। इस सोच का खण्डन होना ही नारी मुक्ति का सबसे सुगम मार्ग है। मन्नू जी की अधिकतर नायिकाएँ नौकरी-पेशा से सुसज्जित हैं किन्तु समाज के साथ उनका संघर्ष जारी है। “दीवार बच्चे और बरसात" की नायिका नौकरी करना चाहती है किन्तु उसका पति हवाला देता है कि औरतें उस घर की नौकरी करती हैं जिस घर का पुरुष पैसा कमाने में अक्षम हो मै खुद आर्थिक स्थिति को सक्षम करने में मजबूती से कार्य कर रहा हूँ किन्तु नायिका उसे आत्मर्निभरता का हवाला देती है बात से सहमत न होते हुए आत्मर्निभरता का हवाला देती है। “एक नन्ही सी पौध ने जर्जर, जीर्ण, पुरानी दीवार को बरसात का सहारा पाकर गिरा दिया, वैसे ही एक गृहस्थिन की पुरानी मजबूर प्रतिभा का भंजन करके मन्नू जी ने उसके स्थान पर एक आत्मनिर्भर और स्वतंत्र विचारों वाली नारी की स्थापना की है।"16 "जीती बाजी हार" की नायिका 'मुरला', 'अभिनेता" की रंजना, "अकेली की सोमा बुआ "नशा" कहानी की आनंदी; सभी स्तियाँ आर्थिक आत्मनिर्भरता के प्रति संवेदनशील है। मुरला, रंजना, सोमा बुआ, आनंदी सभी स्त्रिमों आर्थिक मांग अलग-अलग है किन्तु संवेदनाएँ एक जैसी हैं। उपरोक्त नायिकाएँ सिर्फ स्त्री ही नहीं है बल्कि स्त्रीत्व की, स्वाभिमानी प्रतिमूर्ति हैं जो समस्याओं से लड़ना और उन्हें सुलझाना तो जानती है किन्तु किसी पुरुष की गुलामी कबूल करना और उनके अहसान के साँचे में जीना नही स्वीकार करती है।

पारिवारिक विघटन नारी संवेदना का मूल

मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में स्त्री को पारिवारिक विघटन की समस्या के प्रति ज्यादा संवेदनशील दिखाया गया है। परिवार को एक सुत्र में पिरोने का कार्य घर की औरत पुरुष के अपेक्षा अधिक कुशलता से कर सकती है। वह परिस्थितियों के अनुसार अपने संवेदना एवं आवेग में परिवर्तन लाकर समस्या का समाधान करती है। भारत को आजादी मिलने के बाद औरत को सामाजिक बंधनों से मुक्त करके उनको तमाम अधिकार प्रदान किये गये जिसके कारण वह अपने कर्तव्य को और व्यापक बनाकर समाज के हर क्षेत्र में अपना परचम लहरा सकें किन्तु गहराई से अध्ययन किया जाय तो आज भी तथाकथित अहंवादी सोच की प्रधानता रखने वाले लोग औरत को उभरने नही देना चाहते। लेखिका के कहानियों एवं कुछ उपन्यासों में ऐसी ही स्त्रीयों के चरित्र को ज्यादा महत्व प्रदान किया गया है जो पारिवारिक बंधन को तोड़कर अपनी स्वतंत्रता की आवाज बुलंद करती है। मुक्ति की आकांक्षी औरत जब अपने हक के लिए प्रतिवाद करती है तब उसे पराए घर की, अबला, माँ, संस्कार या फिर बलात दबाने की सफल कोशिश की जाती है। औरत को पीछे धकेलने एवं उनकी संवेदनाओं का दमन करने वाली नीति ही पारिवारिक विघटन का मुख्य कारण होता है-चाहे आर्थिक स्वालंबन की चाह हो या फिर शिक्षा, समाज, विवाह, कार्य क्षेत्र चुनने की आजादी सभी बिन्दुओं पर लेखिका ने नारी संवेदन को प्रधानता दी है। इनकी नारी स्व के प्रति चेतनाशील एवं पारिवारिक एकता के प्रति संवेदनशीलता के प्रश्न के साथ समाज के सामने डटकर खड़ी नजर आती है।

"ऊँचाई कहानी" के माध्यम से लेखिका ने स्त्री-पुरुष के मध्य पनपते खटास एवं टकराहट को रेखांकित किया है। विवाह से पूर्व टूटे प्रेमी के संबंधों में जहाँ सकारात्मक सोच उत्पन्न करने का भाव जागृत होता है वहीं पति-पत्नी के प्रति दरार

एवं संबंधों में चटखन की प्रवृत्ति भी चित्रित की गई है। कथा नायिका शिवानी का प्रेमी उसके घर मिलने आता है तो शिवानी का पति उसे बेवफा के उपाधि से सम्मानित कर देता है। यहीं से शुरू होता प्रताड़ना का दौर जहाँ ज्यादा दबाव स्त्री को ही सहना पड़ता है।

नारी-स्वातंत्र्य की संवेदना:-

आधुनिक स्त्री निज की अनुभूति से जिस स्वतंत्रता को गढ़ती है उसी को स्वतंत्रता का उच्चतम् शिखर मानती है। वह चाहती है कि पुरुष-प्रधान समाज उसकी सहभागिता को उतना ही महत्व दे जितना पुरुषों के कार्यव्यापार को प्राप्त है। लेखिका ने अपनी कहानी 'ईसा के घर इन्सान', 'एक कमजोर लड़की की कहानी', 'जीती बाजी की हार', 'गीत का चुम्बन' आदि कहानियों में औरत का ऐसा चित्र अंकित किया है जिसमें घर की चहार दिवारी का बंद संसार एकाएक उनके लिए छोटा पड़ जाता है। ये कहानियाँ नारी के छटपटाहट का यथार्थ दस्तावेज है।

लेखिका नारी को उनकी घुटन से मुक्त एवं उनमें अदम्य साहस का संचार कराने की पक्षधर है। 'ईसा के घर इंसान' की नायिका 'एंजिला' अपनी स्वतंत्रता के जरिए समूची औरत जाति की स्वतंत्रता के प्रति आवाज उठाते हुए कहती है- "मैं फादर को भी दिखा दूँगी कि जिन्दगी क्या होती है ? ये सब ढोंगी हैं, मैं यहाँ नही रहूंगी.... और दूसरी तरफ धार्मिक और सामाजिक हर प्रकार की रुढिगत परंपरा के प्रति मन में विश्वास लिए अपनी ही आत्मा को मिटाकर रहने वाली जूली है। ऐंजिला स्पष्ट शब्दों में कहती है- "मैं नहीं रहूँगी यहाँ देखो मेरे रूप को... मै अपनी जिन्दगी को नष्ट नही होने दूँगी । मैं जिन्दा रहना चाहती हूँ। आदमी की तरह जिन्दा रहना चाहती हूँ । मैं इस चर्च में घुट-घुट कर नही मरूँगी । मैं भाग जाऊँगी, मैं भाग जाऊंगी....।"[17]

लेखिका के स्त्री पात्र जहाँ एक तरफ आत्मीक स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु संघर्ष करते दिखाई पड़ते हैं, वहीं दूसरी तरफ उनके संवेदना का विस्तार शैक्षिक समृद्धि एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता के प्रति आग्रहशीलता भी है।

प्रवर्तमान जीवन की त्रासदी में स्त्री संवेदना की स्थिति-

आजादी के बाद हिन्दी साहित्य में लेखन की जिस परंपरा का सर्वाधिक उपयोग हुआ, वह है परंपराओं, रुढ़ियों एवं अंधश्रद्धा से मानव मुक्ति प्राप्त करें किन्तु यह समस्या जितनी सुलझाने की कोशिश की गई उतनी ही जटिल होती गई। पुरातनता को छोड़ नवीनता को धारण करने का जितना दिखावा भारतवर्ष में हुआ वह साहित्य को भी गहरा प्रभावित किया। प्रभावित उस तर्ज पर की नवीनता और पुरातनता के अंतरद्वंद्व से उपजी मानसिक पीड़ा पूरे स्त्री-विमर्श का केन्द्र बिन्दू बन गया। इसी अन्तद्रन्द्र से निःसृत मन्नू-भण्डारी की कहानी 'त्रिशंकु' परंपराओ और आधुनिक सभ्यताओं के जटाजूट में इस प्रकार उलझी है कि इस गुत्थी को खोलना समूचे नाही जाति की संवेदना को सुलझाने की सफल पहल हो सकती है। लेखिका की 'त्रिशंकु' कहानी दो पीढ़ियों के बीच टकराहट और उससे उत्पन्न आत्मसंघर्ष की कहानी है। आलोच्य कहानी में पति-पत्नी एवं उनकी पुत्री तनु है, जिसके नवयौवन के आकर्षण से किशोर उम्र के लड़के छेड़खानी करना प्रारंभ कर देते हैं। इस घटना को तनु अपनी मम्मी से बताती है। तनु की माँ आधुनिक सोच वाली स्त्री होती है अत: वह उन लड़कों को अपने घर पर बुलाकर चाय पिलाती है और साथ ही तनु की उनसे दोस्ती करा देते है। आगे-चलकर तनु को उन्ही में से एक लड़के से प्यार हो जाता है। इसका संकेत पाते ही तनु की माँ उसके ऊपर आगबबूला हो उठती है और कहती है।"तुमको छूट दी... आजादी दी, पर इसका मतलब यह तो नही कि तुम उसका नाजायज फायदा उठाओं। बीते भर की लड़की और करतब देखो इनके। जितनी छूट दो

उतने पैर पसरते जा रहे हैं उनके । एक झापड़ दूँगी तो सारा रोमांस झड़ जाएगा दो मिनट में"[18] मुक्त रहो और मुक्त रहने दो का नारा देने वाली तनु की माँ आज तनु के लिए जंजीर क्यों बन गई ? लेखिका ने आलोच्य कहानी के माध्यम से भारतीय संस्कृति में कालांतर से चले आ रहे संतान की सुरक्षा के प्रति माता-पिता की चिंता को एक और रेखांकित किया है तो दूसरी ओर स्त्री को स्त्री के सामने स्त्री की स्वतंत्रता हेतु प्रश्नवाचक मुद्रा में खड़ी करके उससे यह कहलवाने की भरसक कोशिश की गई है कि हम कितने भी मॉडर्न क्यों ना हो जाए भारतीय समाज अपनी संस्कृति के चादर को थोड़ा छोटा भले कर ले किन्तु उसे फेंक नही सकता। चाहे उससे किसी की स्वतंत्रता बाधित ही क्यों ना हो। 'आपका बंटी, यही सच है, एक इंच मुस्कान' सभी संग्रहों में कमोवेश नारी संवेदना एवं शिकन का दर्शन लेखिका के कथा साहित्य में होता है।

3. मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में स्त्री संवेदना :

आठवें दशक के स्त्री लेखिकाओं में गर्ग जी का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता रहा है। स्त्री विमर्श के परिप्रेक्ष्य में मृदुला गर्ग यथार्थवादी दृष्टिकोण रखती हैं। सर्वविदित है कि लेखिका किसी भी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना को जब तक स्वानुभूति का विषय नहीं बना लेती तब-तक उसके प्रति अपनी रागात्मिकता एवं वितृष्णा के नजरिए को अभिव्यक्त नही करती है।

जन्म-मृदुला गर्ग का जन्म 25 अक्टूबर 1936 को कलकता के एक सुसंस्कारित परिवार में हुआ। शिक्षा-दिक्षा के उपरांत इनके लेखन का विषय नारी संवेदना की भावभूमि बनी। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न होने के कारण साहित्य के विभिन्न विधाओं यथा- उपन्यास, कहानी, नाटक आदि पर इनका लेखन सफलता पूर्वक होता रहा है।

उपन्यास साहित्य :-

I. उसके हिस्से की धूप, 1975

II. वंशज - 1976

III. चितकोबरा- 1979

IV. अनित्य 1980

V. मैं और मैं - 1984

VI. कठगुलाब - 1996 (ज्ञानपीठ पुरस्कृत)

कहानी संग्रह--:

I. कितनी कैदें

II. टुकड़ा टुकड़ा आदमी

III. डेफोडीयल जल रहे हैं

IV. ग्लेशियर से

V. उर्फ सैम

VI. दुनिया का कायदा

VII. शहर के नाम

VIII. समागम

नारी संवेदना की अवधारणा

पिछले पाँच दशकों से हिन्दी साहित्य की परंपरा में अनेकानेक परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं अनेक साहित्यिक आन्दोलनों का सुत्रपात भी हुआ है। स्त्री विमर्श वादी आन्दोलन भी इसी परंपरा की एक कड़ी है किन्तु वर्तमान समय में नारिवादी विमर्श नई भाषा नया दृष्टिकोण के साथ पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा है। जिस

खामोशी ने औरत को उसी के मानसिक चहारदिवारी में कैद कर रखा था? वह अब उस चुप्पी को तोड़कर तार्किक एवं प्रश्नानुकूल रवैय्या आख्तियार कर रही है। स्त्री विमर्श जब से साहित्य की मुख्यधारा का विषय बनने की कोशिश कर रहा है तब से ही इसे लिंग-भेद पर आधारित स्त्री का स्त्री के प्रति लिखा गया सांवेदिक प्रक्रिया मात्र समझा जाता रहा है किन्तु यह अवधारणा गलत है। मृदुला गर्ग इसके संदर्भ में कहती हैं- "अंग्रेंजी के 'फेमनिज़्म' शब्द का सार्थक हिन्दीनुवाद नारी चेतना है। हर वह स्त्री-पुरुष' 'फेमिनिस्ट' माना जाना चाहिए जो नारी-चेतना या दृष्टि से सम्पन्न हो। चूँकि हम दृष्टि या चेतना की बात कर रहे हैं, लिंग की नहीं इसलिए हमें यह मानने में कतई एतराज नहीं है कि नारी चेतना से सम्पन्न साहित्य स्त्री-पुरुष दोनों रच सकते हैं।"[19]

मृदुला गर्ग हिन्दी साहित्य की लब्धप्रतिष्ठ लेखिका हैं। इनके कथा साहित्य में ऐसी स्त्री का चित्रण हुआ है, जिसमें शोषण और अन्याय के खिलाफ न सिर्फ आवाज उठाने का साहस है, बल्कि समस्याओं से संघर्षरत होने का जज्बा और अपनी अस्मिता के प्रति जागरुकता भी है। प्रस्तुत लेखिका की कहानियों में भारतीय समाज में नारी संवेदना की अनेक छवियाँ अंकित है। "प्रचलित अर्थ में वे अपने को नारीवादी लेखिका नहीं मानती लेकिन पुरुष वर्चस्व वाली सामाजिक संरचना में स्त्री के प्रति चलते रहने वाले पूर्वाग्रहों और गैरबराबरी के विरुद्ध वे सब कहीं बहुत जागरुक, एवं सजग दिखाई देती है।"[20]

सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक राजनीतिक क्षेत्र मे नारी संवेदना

सामाजिक क्षेत्र में नारी

मृदुला गर्ग की दृष्टि में स्त्री का समाज में स्वतंत्र सत्ता हो, वह अपने निर्णय के साथ अपना जीवन, आजीविका आदि चुन सके। इनकी रचनाओं में नारी अपने

मानवी रूप में स्वतंत्रता प्राप्त करती है। स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व की चाह में संघर्षरत स्त्री इनकी कहानी 'हरी बिन्दी' में बहुत सहजता से अंकित हुई है। 'हरी बिन्दी' कहानी की नायिका अपने पति राजन से मुक्त होने के बाद बिना किसी रोक-टोक के केवल अपनी मर्जी से जीने की चाह में प्रसन्न है। "आज उसका पति राजन नहीं है, हर छोटी से छोटी बात में उसकी टोका-टाकी और दखलंदाजी से वह पूरी तरह मुक्त है। मुक्ति का यह एहसास ही उसे पंछी की तरह हल्का और निर्बाध बना जाता है-कीट्स शायद इसी को 'फुल प्रोटेड इन' कहता है। बाहर निकलने के लिए पहने गये नीले सूट पर वह 'हरी बिन्दी' लगाती है। जीवित होने पर जो राजन कभी नहीं करने देता।"[21] यह सर्वमान्य है कि स्त्री और पुरुष के समागम से ही संसार का सृजन संभव है। एक को मुख्य और दूसरे को गौण या नगण्य मानना ही संसार की गति का बाधक है। लेखिका नारी स्वतंत्रता को इन्ही दृष्टिकोणो से मापती एवं व्याख्यायित करती नजर आती है।

आर्थिक क्षेत्र में नारी-

आर्थिक सुदृढता आज के युग की सबसे बड़ी कड़ी है। जीवन को सुविधा संपन्न एवं सहज बनाने हेतु अर्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। लेखिका की स्त्री पात्र आर्थिक स्वतंत्रता एवं सबलता के लिए सजग हैं। इनके उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका 'मनीषा' एक स्कूल टीचर है वह खुद पैसा कमाती है साथ-ही-साथ घर का संपूर्ण कार्य बड़ी कुशलता से करती है। मनीषा घर-बाहर के काम को पूरी इमानदारी एवं प्रसन्नचित्त मुद्रा में करती है। वह अपने व्यवसाय से पूर्णत: संतुष्ट भी है और घरेलू काम के प्रति जवाबदेह भी। लेखिका ने 'मनीषा' के माध्यम से एक ऐसी नारी का चित्र उकेरा है जो आज की युवा पीढ़ी को यह संदेश देती है कि कमी देखने से समस्या सुलझती नही बल्कि बढती है। अत: जीवन के इस पक्ष पर हमेशा अपने योगदान को देखना श्रेष्ठकर है, भाग तो स्वयं प्राप्य है।

मृदुला गर्ग की कहानी 'बीच का मौसम' भी नारी की आर्थिक स्वतंत्रता एवं सशक्तता पर बल देती कहानी है। 'बर्फ की बारिश' जैसी कहानियों में नारी के स्वतंत्र निर्णय एवं विचार को रूपायित किया गया है। इस कहानी की नारी-पात्र ('बन्नो' अपने पति के साथ अमेरिका जाने से इन्कार कर देती है किन्तु उसके दोनो बेटे पिता के साथ अमेरिका चले जाते हैं। बन्नो का पति बार-बार साथ चलने को कहता है पर नायिका तीखे स्वर में प्रतिकार करते हुए कहती है- "मैं चुपचाप तुम्हारे पीछे चली जाऊँगी ? मेरा अपना कोई अस्तित्व नही? चुनाव नहीं? निर्णय नहीं ?"[22] निर्णय की स्वतंत्रता के प्रति अडिग बन्नों उस समय पति के साथ जाने से मना अवश्य कर देती है किन्तु कुछ समय पश्चात जब उसका पति काफी बीमार पड़ जाता है, तब वही बन्नो एक समझदार स्त्री की भाँति अपने- परिवार की रक्षा एवं सुरक्षा हेतु अमेरिका प्रस्थान करती है।

मृदुला गर्ग अपने नारी पात्रों को जहाँ स्वयं के स्वतंत्र निर्णय के प्रति अडिग बनाती है वहीं बिचारशीलता एवं समझ के प्रति सजग एवं संवेदनशील भी बनाती हैं"।

धर्म के क्षेत्र में नारी-

लेखिका के सभी स्त्री-चरित्र धर्म भीरु न होते हुए भी धर्म में अटूट श्रद्धा एवं विश्वास रखते हैं। मृदुला गर्ग स्वयं भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की पक्षधर रही है। इनके उपन्यास "वंशज" की नायिका 'रेवा' धार्मिक प्रवृत्ति की नारी है। वह पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए पति को सर्वोपरि समझती है। रेवा का भाई सुधीर, अपनी बहन की धार्मिक मनोवृत्ति को समझते हुए कहता है कि भारतीय स्त्री अपने पति का कितना सम्मान करती है क्या वह नहीं जानता ? रेखा को देखो, जज साहब तक को अपने पति से निचले पायदान पर ला बिठलाया। क्योंकि नायिका अपने विवाह के बाद जज साहब को पति संदीप से कम महत्व देती है। आलोच्य कृति में नारी अपने धर्म

को बखूबी समझती हैं, वह समय स्थान एवं परिस्थिति के अनुसार अपने धर्म का चुनाव करते हुए उचित निर्णय लेती है।

मृदुला गर्ग की रचनाओं में भावात्मक एवं बौद्धिक नारी की संवेदना -

भावात्मकता एवं बौद्धिकता एक साथ प्रस्तुत होना अत्यन्त कठिन है किन्तु अलग-अलग रचनाओं में एक ही लेखक द्वारा बौद्धिक वृत्ति एवं भावनात्मक सदासयता का विर्निर्माण करना आसान होता है। लेखिका मृदुला गर्ग ने अपने कुशल लेखन कौशल द्वारा इन दोनो वृत्तियों का अंकन अपने उपन्यास 'अनित्य' एवं 'चितकोबरा' में अंकित करती है। एक तरफ 'अनित्य' प्रेम और समर्पण का प्रतीक है तो दूसरी तरफ "चितकोबरा 'उपन्यास नारी के बौद्धिक सोच का 'माइल स्टोन'।

अनित्य एवं कठगुलाब उपन्यास में नारी संवेदना-

'अनित्य' उपन्यास में नारी संवेदना का धरातल प्रेम और समर्पण के भाव से भावित है। इस उपन्यास की नायिका स्वर्णा प्रेम को ऐय्यारी और आवारगी का विषय न मानते हुए, प्रेम की निष्पत्ति विवाह में परिपूर्ण होना मानती है। स्वर्णा का मानना है कि प्रेम के बाद पश्चाताप नही, प्रेम का अन्त विवाह हो। वह बंगाली होते हुए, उड़िया युवक 'लक्ष्मण' से प्रेम करती है और सामाजिक वर्जनाओं के चलते भागकर उससे विवाह कर लेती है। ताकि वह अपने शारीरिक समर्पण द्वारा प्रेम की पूर्णता पा सके। उसका मानना है "जिससे प्रेम करो शादी भी उसी से करो। "[23]

आलोच्य उपन्यास में नारी प्रेम और ममत्व की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित हुई है। कुण्ठा का भाव जैसे उसके इतिहास में कभी अंकित ही न हुआ हो। शादी के बाद 'अनित्य' की नायिका माँ नही बन पाती है। जिस प्रकार प्रेम का अन्त विवाह में निहित है उसी प्रकार विवाह का प्राप्य सन्तान है। स्वर्णा इस सुख से वंचित रह जाती है किन्तु मार्ग का अन्वेषण और समस्या का समाधान जैसे उसकी नियति हो गयी

है। वह अपना सम्पूर्ण ममत्व, वात्सल्य, दया, ममता, करुणा एवं स्नेह अपने मालकिन के बच्चों को समर्पित कर देती है। इस तरह लेखिका ने स्त्री के भावनात्मक संवेदना का चित्रण करके नारी को वह दरजा दिया है जो सिर्फ औरत को ही दिया जा सकता है। इसके साथ ही लेखिका ने नारी के बौद्धिक संवेदना का भी चित्रण किया है कि नारी अपनी बुद्धि और विवेक का प्रयोग कर स्वतंत्र अस्मिता की अधिकारिणी हो सकती है। इनके उपन्यास (कंठगुलाब) की स्त्री पात्र दर्जिन बीबी आत्मसाक्षात्कार की अग्नि परीक्षा से लोहा लेते हुए, नारी के स्वतंत्र अस्मिता एवं अस्तित्व का पहचान बनती है। एक अदद फैशन डिजाइनर मशीन लेकर पति से अलग दो छोटे बच्चों को पालने का संकल्प लेकर दर्जिन बीबी का स्वाभिमान की मजबूत धरातल पर पाँव जमाते ही, सामान्य से विशिष्ट स्त्री बन जाना संयोग या अभिप्राय युक्त लेखन का नमूना नहीं बल्कि 'मनुष्य' के रूप में अपनी जीवन-शर्तों और निर्णयों का स्पष्ट स्वीकार है- "मुझे मात्र शरीर बनकर जीना पसंद नहीं था और मैं दया का पात्र भी बनना नहीं चाहती। स्वाभिमान की विशेषता है कि तानों-उलाहनों की विद्वेषपूर्ण संकीर्णताओ में गर्क होने के बजाय वह चुनौतियों से जूझते हुए सतत उन्नयन का कठिन लक्ष्य चुनता है। इसलिए पूरे उपन्यास में एक मात्र दर्जिन बीबी ही पति-प्रबंचिता ऐसी स्त्री है जो पति की गरिमा के खिलाफ एक शब्द भी मुंह से नहीं निकालती । ये ऐसी स्त्री है जो दूसरों को कोसने के बजाय स्वयं अपने जीवन की नियंता बन जाती है।" [24]इस प्रकार मृदुला गर्ग उपरोक्त दोनों उपन्यासों में क्रमश: प्रेम के भावानात्य एवं बुद्धि के स्वाभिमान परक संवेदना की वकालत करती नज आती है।

चितकोबरा उपन्यास में स्त्री संवेदना-

हिन्दी साहित्य के महिला कथाकारों में मृदुला गर्ग का उपन्यास 'चितकोबरा' काफी चर्चित रहा है। आलोच्य उपन्यास नारी संवेदना के विविध आयामों से ओत-प्रोत

है। एक तरफ इस उपन्यास की नायिका प्रेम, समर्पण की प्रतिमूर्ति है तो दूसरी तरफ एक स्वाभिमानी नारी भी है। स्त्रीत्व की सजगता ही इस उपन्यास का प्राण तत्व है। इस उपन्यास की नायिका 'मनु' विवाह के उपरान्त 'पति' 'महेश' को अपना सर्वस्व समर्पित कर देती है यदि वह महेश को वैवाहिक जीवन के समस्त सुख देती है और पतिव्रता नारी की आदर्श बनती है। वह अपने पातिव्रत का आदर्श प्रस्तुत करते हुए कहती है कि - "मै चुपचाप उसे वह सब देने में जुट गई थी, जो मेरे ख्याल से एक आम पति-पत्नी से चाह सकता है। सुन्दर-सुचारु घर-गृहस्थी, साफ-स्वस्थ्य बच्चे, सजी-सँवरी सुघड़ पत्नी दोस्तों की भरपूर खातिरदारी, सामाजिक मेल-मिलाप। बहुत जल्दी हम दोनों गोरखपुर के उस छोटे शहर में आदर्श दाम्पति की तरह मशहूर हो गए"[25]

लेखिका यहाँ नारी के आदर्श रूप को अभिव्यक्त करती हैं, कि किस प्रकार एक औरत अपनी पहचान खोकर घर-परिवार की तीमारदारी करती है। परिवार, परंपरा और पति की महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु वह अपनी निजी जिन्दगी के खट्टे-मीठे अनुभव को भूल जाती है। महेश संतुष्ट रहे, प्रसन्न रहे, इस बात के लिए 'मनु' अपने स्त्रीत्व की सजगता भी दाँव पर लगा देती है किन्तु 'महेश' नायिका का सम्पूर्ण समर्पण पाकर भी उसके प्रति उदासीन है। स्वाभिमानी नायिका 'महेश' की उदासीनता देखकर रिचर्ड की ओर आकर्षित होती है। समझौता और त्याग की बात करें तो 'मनु' माँ बनना इसलिए स्वीकार करती है क्योंकि 'महेश' का ख्याल था कि बच्चे होने चाहिए- "हिन्दूस्तानी स्त्री मातृत्व की साक्षात् प्रतिमा होती है।... हिन्दुस्तानी पुरुष की दृष्टि में। वह सोच भी नही सकती वह माँ के अलावा कुछ और बनना चाह सकती है।"[26] इसप्रकार पुरुष प्रधान समाज नारी की सीमा सिर्फ उसके घर, परिवार तक ही देखने का आदी है। नायक 'महेश' भी 'मनु' से सिर्फ मूक समर्पण चाहा था। मनु से उसका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त कर उसे अपने आधार पर ढालना चाहता था परंतु

नायिका इस एकाधिकार वाले समर्पण के विरुध्ध थी। मनु कहती है- "नहीं, मुझे नाम - चाहिए उसका अस्तित्व भले कुछ न हो, फिर भी मुझे चाहिए। मेरी मुक्ति चाहिए। समर्पण का अधिकार मुझे चाहिए। एक मुक्त नाम....मनु....मनु....मनु ।" (27) आलोच्य उपन्यास में लेखिका ने नारी संवेदना को दो आयामों में चित्रित किया है। मनु का किरदार एक है किन्तु समय के परिवर्तन एवं समस्या के समाधान हेतु वह दो अलग-अलग व्यक्तित्व की स्वामिनी भी है। यह उपन्यास इस बात का प्रमाण है कि, जब संवेदनाएं आहत होती हैं तो मान्यताएँ बदलती है। प्रेम, त्याग, समर्पण की अधिकारिणी 'मनु' को जब महेश से वैसा व्यवहार नही मिला जैसा वह उसके साथ करती है, परिणामतः मनु की नारी चेतना पहचान हेतु तड़प उठती है और वह स्त्रीत्व की रक्षा हेतु विद्रोहिणी स्वर अख्तियार करती है।

4. मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में स्त्री संवेदना

मैत्रेयी पुष्पा एक लोकप्रिय रचनाकार हैं। नारी जीवन की संवेदनाओं एवं समस्याओं को वे अपने कथा साहित्य में बड़ी तन्मयता से उजागर करने की कोशिश करती दिखाई पड़ती हैं। प्रवर्तमान समाज की नारी को मैत्रेयी पुष्पा ने एक नई सोच और संवेदना से जोड़ा है। इन्होंने नारी को दुःख-दर्द व समस्याओं से संघर्ष करते हुए अपने स्वत्व की रक्षा करने हेतु हमेशा तत्पर दिखाया है। मैत्रेयी पुष्पा का जीवन इतने ऊबढ़-खाबड़ स्थलों से गुजरा है कि यदि उनकी 'आत्मकथा' मात्र का विश्लेषण कर लिया जाय तो भी नारी संवेदना का पूर्ण अध्ययन हो सकता है। अत: संक्षेप में लेखिका के जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति तर्क-संगत जान पड़ती है।

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म, शिक्षा एवं विवाह-

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म- 30 नवम्बर 1944 को उत्तर-प्रदेश, अलीगढ़ सिरकुरा गाँव में हुआ था । इनके पिता हीरालाल एवं माता कस्तुरी देवी थी। अल्पायु में ही

पिता की छत्र-छाया बालिका के सर से उठ गई । माता कस्तूरी ने ही इनका पालन-पोषण किया। असामयिक पिता की मृत्यू एवं आदर्श माँ का लाङ मैत्रेयी को बचपन में ही संवेदनशील बना दिया।

शिक्षा- मैत्रेयी पुष्पा की पूरी शिक्षा झाँसी में ही सम्पन्न हुई। माता का कामकाजी महिला होना पुत्री पुष्पा के शिक्षा पर बराबर ध्यान न रख पाना लाज़मी है किन्तु घर में किताबों की भरमार थी । उसकी "माँ कहती थी कि मैत्रेयी का विवाह तो किताबों से हुआ है। उसे किताब, कॉपियों के संग रहना है। मैत्रेयी ने बी०ए०की परीक्षा बुंदेलखण्ड कॉलेज झाँसी से उत्तीर्ण की तथा एम०ए०की परीक्षा सन् -1964 में उत्तीर्ण की। मैत्रेयी पुष्पा ने जब मोठ के डी०वी०इण्टर कॉलेज में प्रवेश लिया, तो उस समय पूरी कक्षा में ये अकेली लड़की थी । अवसर पाकर कॉलेज के प्रिंसीपल ने ही उसे हवस का शिकार बनाना चाहा परन्तु नाकामयाब रहा तब मैत्रेयी को दुःखद आश्चर्य हुआ कि "यह कैसी पढ़ाई-लिखाई है ? जिसके चलते लड़की हास्यास्पद बनी, बदनाम हुई, यह कैसा विधा मंदीर है ? जिसका छीछालेदर गुरुजन ही कर रहे हैं। इस प्रकार अनेक कठिनाईयों का सामना करते हुए मैत्रेयी ने अपनी शिक्षा पूरी की।" [28]

मैत्रेयी पुष्पा का रचना संसार-

जैसा कि सर्वविदित है प्रत्येक साहित्यकार लेखक होने के साथ-साथ कुशल चिन्तक भी होता है। परिस्थितियों का प्रभाव कथाकार पर पड़ता है और वैसी ही उनकी रचनाधर्मिता बनती है। एक महिला होने के नाते मैत्रेयी पुष्पा स्वयं बहुत कुछ भोगा-समझा है। उनके कथा साहित्य में नारी के संघर्ष को जिस रूप में अभिव्यक्ति मिली है 'उससे वे स्वयं अछूती नहीं रही हैं । लेखिका अपने रचना संसार में मुख्यतः नारी संवेदना और सिकन को रूपायित करने की भरसक कोशिश की है। इसी कारण

स्वातंत्रोत्तर कथा साहित्य में खासकर माहिला लेखिकाओं में इनका स्थान सर्वोपरि जान पड़ता है।

कहानी-संग्रह-

(1) चिन्हार-1991 (2) ललमनियाँ- 1996

(3) गोमा हँसती है-1998 (4) पियरी का सपना

उपन्यास-इनके अब तक ग्यारह (11) उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। प्रमुख उपन्यासों का नारी-संवेदना विषयक सर्वेक्षण सर्तसंगत है।

(i) स्मृति दंश (2) बेतवा बहती रही (3) इदन्नम

(4) चाक (5) झूला नट (6) अल्मा-कबूतरी

(7) कस्तूरी कुण्डल बसै (8) कही इसूरी फाग

मैत्रेयी पुष्पा का नारी संवेदना संबंधी अवधारणाएँ-

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी संवेदना असम्पूर्णता के साथ प्रस्फुटित हुआ है। लेखिका के, सम्पूर्ण कथा में नारी संवेदना की मनोभूमि को केवल परंपरावादी, रुढ़िवादी या कालांतर से चले आ रहे स्त्री के प्रति मापदण्डों पर नही देखा गया है। न ही लेखिका स्त्रीत्व का अर्थ उस रीति पर लेती है जिसमें मातृत्व ही स्त्री की सम्पूर्णता का परिचायक होता है। वे मानती है कि नारी, देह मात्र नहीं है, वह एक मानवी है, उसमें वे सभी सगुण और दुर्गुण है किसी भी मनुष्य में होते हैं। इसलिए मैत्रेयी पुष्पा के स्त्री अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ समाज के सामने प्रस्तुत होती हैं। महिलाओं के प्रति लेखिका का विचार एकदम बेबाक है वे कहती हैं- "मनुष्य का मूल रूप है स्त्री की नैसर्गिक प्रवृत्ति को और पुरुष की स्वाभाविक वृत्तिओं को समान

रूप से देखना, दोनों की जरूरतों को समान महत्व देना तथा समान रूप से भागीदारी होना स्त्री-विमर्श का लक्ष्य है।"[29]

'चर्चा हमारा' (स्त्री-विमर्श') परक 'पियरी का सपना' कहानी में मैत्रेयी का आत्मकथ्य एवं नारी संवेदना का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसमें नारी संवेदना की वे कहानियाँ हैं जो इस बात की पैरवी करती हैं कि स्त्री भी एक मानवी है वह अपने जीवन को अपने ढंग से जीना चाहती है, वह मुस्कराना खिलखिलाना चाहती है। प्रेम और घृणा का अधिकार एवं कार्यान्वयन चाहती है किन्तु विडंबना यही है कि उसे अपनी इस संवेदना के बदले लांछन और बेड़ियाँ मिलती है। मर्द चाहे विवाहित हो या अविवाहित, वह प्रेम के द्वार में अबोध प्रविष्ट हो सकता है, एक से अधिक प्रेम प्रसंग रख सकता है, किन्तु औरत ऐसा नहीं कर सकती लेखिका प्रश्नानुकूल मुद्रा में खड़ी होती है। वह कहती है क्या पुरुष स्त्री की भावनाएँ और संवेदनाएँ इतनी भिन्न होती हैं ? कि उनके प्रेम के अधिकार भी असंतुलित होते हैं?

यौनशुचिता

स्वातंत्रोत्तर महिला कथा साहित्य में यौन शुचिता एक गंभीर मुद्दा रहा है किन्तु मैत्रेयी पुष्पा ने अपने रचनाओं में यौन शुचिता के संदर्भ में यह प्रश्न उठाया है कि यौन शुचिता क्या सिर्फ महिलाओं के लिए ही महत्व ही बात है ? या फिर पुरुष समाज भी इसका पालन करेगा ? पितृसतात्मक समाज ने नारी के लिए ऐसे नियम बनाए हैं जो सिर्फ पुरुषों के हित में है । नारी अभी तक अपने लिए कोई नियम नही बनायी और न ही कभी स्त्री से इसके परिप्रेक्ष्य में राय लिया गया है। पुरुष प्रधान समाज में सदैव नारी को ही अनुशासित और अनुकूलित किया जाता रहा है। औरत के लिए शील, नैतिकता, मर्यादा यौनशुचिता आदि प्रतिमानों का अनुपालन करना जरूरी है। यदि वह उपरोक्त प्रतिमानो का अनुपालन करने से चूकी तो उसे कुलटा, चरित्रहीन

इत्यादि उपमानों से अलंकृत किया जाता हैं॰ नारी की मुक्ति हेतु जितना महत्वपूर्ण कारक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्वतंत्रता है उतना ही महत्वपूर्ण यौन-समर्पित शुचिता भी !

वस्तुत: यौन शुचिता पितृसत्तात्मक व्यवस्था का एक ऐसा संस्कार या मूल्य है जो औरतों के जेहन में गहराई से जड़ बन चुका है। भारतीय संस्कृति ऐसी रही है कि, यहाँ कालांतर से लड़का और लड़की में भेद-भाव की स्थिति बरकरार है। जहाँ लड़के को स्वच्छंदता प्राप्त है, वहीं लड़की कुछ मामलों में स्वतंत्र भी नहीं है। ज्यादातर लड़कियों को ही यौनिक शुद्धता का पाठ पढ़ाया जाता है। इसका अप्रत्यक्ष चित्रण मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा गुड़िया भीतर गुड़िया में दिखाई पड़ता है ।

'गुड़िया भीतर गुड़िया' मैत्रेयी का आत्मकथात्मक उपन्यास है । आलोच्य कृति लेखिका की आत्मकथा का दूसरा भाग है। प्रथम भाग 'कस्तुरी कुण्डल बसै' में यौन शुचिता सम्बन्धी कोई दृष्टान्त दिखाई नहीं पड़ता किन्तु दूसरे भाग में इसका आग्रह जरूर परिलक्षित हुआ है । 'गुड़िया, भीतर गुड़िया' के संबंध में यौन शुचिता को लेंकर 'ऋचा सिंह कहती हैं- "मेरा यह कहने का अर्थ बिल्कुल नहीं है कि औरतों के लिए यौन शुचिता नही होनी चाहिए, या औरतों के लिए यौनिक स्वच्छता होनी चाहिए, गीता बहुत अच्छी तरह से जानती है कि औरतों के दिल-दिमाग पर अपना वर्चस्व कायम रखने का पितृसत्तात्मक व्यवस्था का कारगर हथियार औरत की यौन शुचिता ही है, तभी हमारे समाज में औरत बलात्कार होने पर शर्मिन्दा होती है, अदालत में अपराधी की तरह सिर झुकाकर खड़ी होती है और बलात्कारी सिर ऊँचा उठाए मुस्कुराता है। पितृसतात्मक व्यवस्था औरत से यौन शुचिता की महज मांग ही नहीं करती, वरन् सम्मानजनक जीवन जीने की आवश्यक शर्त के तो पर देखती है।"[30]

स्वातंत्रोतर महिला कथा साहित्य में स्त्री-संवेदना को केन्द्र में रखकर 'मैत्रेयी पुष्पा' नारी के यौनिक स्वतंत्रता को लेकर पुरुष प्रधान समाज के सामने कठोर प्रश्न उठाती हैं। उनका मन्तव्य है कि सामाजिक संरचना औरत-मर्द के संयोग से हुआ है, फिर कटघरे में सिर्फ औरत क्यों खड़ी की जाती है ? वे इस व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाती हैं कि पुरुष शारीरिक सुख हेतु घर में पत्नी, बाहर रखेल और कोठे पर वेश्यालय आदि का भोग करता हुआ भी पाक-साफ है। यह सामाजिक व्यवस्था मूल से ही जर्जर और कमजोर है इसका समूल नाश होना अति आवश्यक हो गया है । यदि ऐसी व्यवस्था समाज में ज्यों की त्यों बनी रही तो नारियों पर पाबंदी कब तक लगाकर रखा जायेगा? अब औरते असभ्य तो नहीं होंगी किन्तु अपनी यौनिक स्वतंत्रता की चाहत को दबने भी नहीं देना चाहती और अनैतिक पुरुषों की यौनिक स्वच्छंदता के खिलाफ मोर्चेबन्दी भी ।

गुड़िया भीतर गुड़िया में लेखिका लिखती है कि- "मुझे स्त्री की वह छवि नहीं पेश करनी है, जो मर्यादा, शील-शुचिता और इज्जत के नाम पर स्त्री की नकली तस्वीर है। दमन और दबाव के कारण आखें झुकाए हुए, आवाज को घूँटे हुए.... हाथ-पाँव को सेवा में समर्पित किए हुए..... मुझे ऐसी जिन्दगी देखकर ठेस लगती है।"31

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य पर प्रकाश डालते हुए अरविन्द जैन लिखते हैं कि- "यौन शुचिता, सतीत्व और नैतिकता के धार्मिक संस्कार अधिकांश स्त्रियों को 'गूँगी-गुड़िया बनाए रखते हैं। स्त्री अपने साथ होते अन्याय, बलात्कार के विरोध में शिकायत करेंगी तो खुद ही बदचलन, कुलटा, वेश्या, छिनाल, भ्रष्ट या कलमुँही कहलाएंगी । 'सूरजमुखी अंधेरे के' की 'रती', "छिन्नमस्ता" की 'प्रिया', 'इदन्नमम्' की 'मन्दा' और न जाने कितनी ही स्त्रियाँ हैं- जो परिवार, प्रतिष्ठा और बदनामी के भय से आतंकित हैं।"[32]

आत्मनिर्णय का अधिकार -

नारी-संवेदना, स्त्री-विमर्श, नारीवादी आन्दोलन आदि का किसी भी ऐंगिल से विचार किया जाए इन सभी के मूल में एक ही तथ्य दिखाई पड़ता है नारी के अस्तित्व को उसके मौलिक स्वरूप में स्थापित करना। आत्माभिव्यक्ति और आत्मनिर्णय किसी भी व्यक्ति के जीवन का प्राण-तत्व है, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री ! आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री हो या नौकरी पेशा युक्त उसे कार्य करने की आजादी कमोवेश प्राप्त तो है किन्तु किसी भी मुद्दे पर फाइनल डिसीजन वह नहीं ले सकती उसके लिए उसे पुरुष का मुंह ताकना पड़ता है। महिला कथाकारों की सबसे बड़ी लड़ाई यही है कि हमको निर्णय की समानता चाहिए यहा देने का प्रश्न ही नहीं होना चाहिए। किन्तु सामाजिक संरचना प्राचीन काल से ही इस कदर औरत के प्रति रूढ़ हो गया है कि नारी-मुक्ति की कामना तो किया जा सकता है पर इसे व्यवहार में इतनी जल्दी ला पाना थोड़ा कठिन है। परिवर्तन होना अति आवश्यक है प्रयास भी जारी है शिक्षा का प्रसार ही इस रोग से निजात पाने का सबसे रामबाण इलाज है। इसी कारण मैत्रेयी पुष्पा जैसी कथाकार लगातर अपने अभिव्यक्ति कौशल से नारी-मुक्ति की आवाज बुलंद करती हैं "यह बिडंबना नहीं तो और क्या है ? कि स्त्री कमाती है किन्तु उसे स्वतंत्रता पूर्वक खर्च करने का अधिकार नहीं है। स्त्री पारिवारिक रिश्ते को जोड़े रखती है, किन्तु उसे अपने मन के रिश्ते जीने का अधिकार नहीं है। स्त्री की पुरुषों से बराबरी की बातें तो बढ़-चढ़कर होती हैं, किन्तु उसे बराबरी का वास्तविक अधिकार नहीं है। "[33]

प्राचीन काल से ही नारी अपनी आत्मा की आवाज को अनसुना करती आ रही है। हमेशा औरों के हित के हिसाब से खुद को ढालती है। अपने हित में कभी स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेने का अधिकार समाज और समाज के पुरोधाओं ने नही दिया। इसी कारण अपने हक में कोई फैसला लेना स्त्री को गलती लगता है। उसमें

अपराधबोध जगाता है और यहा से उसका जीवन पराधीनता के हवाले हो जाता है। लेखिका इसके खिलाफ है। वो चाहती है कि औरत का अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व हो जैसे पुरुष का है। उसे अपने हित में जो लगे उसे स्वीकारे और जो अहितकर हो उसका परित्याग करने में रंचमात्र संकोच ना करे। मैत्रेयी पुष्पा नारी के पक्ष में वकालत करते हुए अपने नारी चरित्रों के माध्यम से समाज में फैले कुप्रथाओं औ गलत निर्णयों का पुरजोर विरोध करती नजर आती हैं । वे स्त्री-पात्रों के माध्यम से स्वातंत्रोत्तर कथा साहित्य में एक जायज बहस छेड़ती हैं कि औरत को आत्मनिर्णय लेने में संकोच नहीं करना चाहिए कारण कि यही नारी मुक्ति एवं उसके उत्थान का मुख्य हथियार है।

'चाक' उपन्यास में आत्मनिर्णय का पक्ष

मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' उपन्यास स्त्री-संघर्ष का वह दस्तावेज है जिसमें नारी के आत्मनिर्णय का यथार्थ चित्र अंकित है। कथा नायिका 'सारंग' परिवार के मध्य बहू पत्नी, भाभी तथा माँ के भूमिका में जितनी निपुण और संवेदनशील है उतनी ही समाज के सामने साहसी, शिक्षित और निडर भी है। वह समाज और परिवार के सामने एक ऐसी परिस्थिति में सामने आती है जब अन्याय का कोहरा इतना घना हो जाता है कि न्याय की परछाई भी नहीं दिखाई पड़ती। सारंग अपने पति की इच्छा के विरुद्र चुनाव लड़ने का साहस करती है और अपनी ममेरी बहन 'रेशमा' की हत्या करने वालों को सजा दिलवाती है। 'सारंग' में आत्मनिर्णय हेतु आया हुआ यह परिवर्तन आज की पढ़ी-लिखी समूची नारी जाति में नवाचार का संचरण है । यह नवाचार संवेदनात्मक विचार का है नारी की चेतना सजगता उसके चुटपी को तोड़ने में अहम् भूमिका निभाएगा । अब स्त्री दब्बू बनकर शान्ति से अपने ऊपर अन्याय नही सहन करेगी और अपनी बात दबी जबान में नहीं गरज कर कहती है । जिस प्रकार 'सारंग' घर की दहलीज लांघकर समाज के कार्यों में हिस्सा लेने का निर्णय ले रही है,

उसी प्रकार की चेतना और निर्णय आगामी भारतवर्ष की नारियों का मुख्य आभूषण होगा । सारंग स्वयं अपने हित एवं समाज के हित में आत्मनिर्णय लेती है साथ ही वह अन्य नारी-पात्रों को के मुखर होकर समाज के सामने प्रस्तुत होने की हिमाकत करती है। "चाक' उपन्यास की एक और स्त्री-चरित्र 'गुलकंदी' को भी अपने प्रेमी से विवाह कर लेने हेतु प्रेरित करती हैं । उसका साहस बढ़ाते हुए उसे समझाती है कि तुम अपने परिवार वालों के सामने। बिसुनदेव से शादी करने की मांग करो- "कह देती तुम कि मैने अपना सुख-दुख खुद ढूंढा है, इसमें दखल देने वाले तुम कौन हो ?"[34] इस प्रकार सारंग निडरता, साहस और विरोध की ताकत रखने वाली स्त्री के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत होती हैं।

समाज में नारी के अनेक रूप जहां स्त्री की श्रेष्ठता को अभिज्ञान कराते हैं वहीं समाज की संकीर्ण मान्यताओं ने इन रूपों को परिसीमित किया है। स्वातंत्रोत्तर काल के कथा साहित्य में स्त्री के विवेक और निर्णय भी इनके नहीं रह पाते थे । पितृसत्तात्मक समाज स्त्री के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप करता है । मैत्रेयी पुष्पा की 'फैसला' कहानी में यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है । भारतीय समाज में पुरुष अपनी धर्मपत्नियों को ग्राम-प्रधान बनाना इसलिए चाहता है कि वह निर्णय एवं राजनैतिक संचालन खुद करेगा । 'फैसला' कहानी में 'रनवीर' अपनी पत्नी को चुनाव में खड़ा सिर्फ नाम के लिए करता है चुनाव जीतने के तत्काल बाद सारी सत्ता अपने आधिपत्य में कर लेता है। 'स्त्री-विमर्श' पर होने वाली चर्चाओं से पता चलता है कि आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता अभी तक पूर्ण रूप से पुरुषों के हवाले है। स्त्रीयों के लिए इस पितृसत्तात्मक समाज में स्वतंत्रता के साथ कुछ सोचना-विचारना फैसला करना यह असंभव नहीं तो श्रमसाध्य अवश्य है। आधुनिक स्त्री स्वतंत्र अस्तित्व एवं व्यक्तित्व की अधिकारिणी होना चाहती है और यह आवश्यक भी है । स्त्री की स्वतंत्रता का अर्थ शोषण से मुक्ति है ताकि वह स्वतंत्रता के साथ अपना जीवन जी

सके, सोच सके, अभिव्यक्त कर सके और उसके सामने पैतृक अनुशासन की दीवारें न हों । वह पूर्ण-स्वाधीन हो। समाज में निर्णयात्मक व्यवस्था उससे भी संचालित हो! अपने अस्तित्व, अस्मिता एवं स्वाभिमान 'हेतु वह स्वयं संवेदनशील हो । मैत्रेयी पुष्पा के समस्त कथा साहित्य में नारी इसी रूप में चित्रित हुई है इनकी स्त्री पात्र अपने कल्याण हेतु संघर्ष करती हैं और स्वतंत्र विचार, निर्णय एवं साहस के साथ अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण करती है। सबसे बड़ी बात यह है मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री-पात्र सामाजिक विरोध होते रहने के बावजूद अपने साहस से समस्या का समाधान कर लेती हैं। और अन्य स्त्रीयों को भी आत्मसम्मान हेतु प्रेरित करती हैं।

नारी की अस्मिता संबंधी संवेदना-

नारी अस्मिता संबंधी संवेदना साहित्य में महिला कथाकारों द्वारा ही सबसे अधिक चर्चा में आया खासकर स्वातंत्रोत्तर महिला कथाकारों के कथा साहित्य में । अस्मिता का बोध दूसरों के साथ ज्यादा मजबूत और स्वस्थ्य संबंध को जन्म देता है । नारी अस्मिता का मुख्य आधार है औरत को पुरुष संदर्भ के बाहर लाना और स्त्री संदर्भ में ही उसकी व्याख्या करना । पितृसत्तात्मक विचारधारा का विरोध करना उन तमाम तार्किक वृत्तियों को तिरस्कृत करना जो नारी को उसकी पहचान से दूर करते हैं ।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी-अस्मिता की झलक यथार्थ धरातल पर पैर जमाए नजर आती है। 'झलक' 'विजन' उपन्यास की कथा-नायिका' आभा का पति डाक्टर है किन्तु वह पत्नी आभा से अपेक्षा करता है कि वह घर मैं सिर्फ उसके माता-पिता की सेवा करे किन्तु आभा अपनी शिक्षा एवं श्रम को बर्बाद होते नही देख सकती थी वह अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु संबंध विच्छेद करती है और स्वतंत्र रूप से अपने सपने को साकार करते हुए डॉक्टर के पेशे में खुद को सफल बनाती है ।

इस तरह मैत्रेयी पुष्पा स्पष्ट करना चाहती हैं कि औरत कोई निष्क्रिय वस्तु नहीं है, न ही वह किसी की बाँदी या दासी है, बल्कि वह स्वतंत्र व्यक्तित्व रखने वाली मानवी है।

बेतवा बहती रही-

उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने नारी के जीवन के संघर्ष का यथार्थ अंकन किया है जो परंपरागत रुढियों से टकराकर अपनी अलग पहचन बनाना चाहती है। आज के युग में भी नारी के जीवन को भार स्वरुप ही माना जाता है और समाज में उसके साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया जाता है । इस यथार्थ की पुष्टि लेखिका स्वयं करते हुए कहती है-"सूरज बेटी तो मुख जोहती गईया है रे काँड खूँटा, बाँध दो, भोली बछिया सी चल देते है..... जिदे चाहो उते ही, कुछ नहीं कहत है रे.....।"[35]

वास्तव में । 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में लेखिका ने इस यथार्थ को सामने लाने का प्रयास किया है कि औरत की समाज में क्या स्थिति है ? उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान नहीं है। पुरुष प्रधान समाज उसे अपने सांचे में ढालकर देखने का आदी है, और वह घुट-घुट कर जीवन जीने के लिए बिवश है।

मैत्रेयी पुष्पा के लगभग सभी उपन्यासों एवं कहानियों की विषयवस्तु नारी संवेदना एवं स्त्री-विमर्श के पक्ष में रची बसी है। लेखिका की स्त्री पात्र तीन आयामों में अपनी संवेदना की साधना करती नजर आती है। पहले तो वे स्वयं संघर्ष सहती है समस्याओं को सहते हुए पाठक को द्रवित करती है कि वह इस रीति का विरोध करें कि औरत के जीवन में इतना बड़ा दुःख का पहाड़ क्यों खड़ा है। दूसरे वे समस्याओं से टकराती हैं, संघर्ष करती हैं, परिस्थिति को बदलते हुए हार भी हो जाए, तो कोई दिक्कत नही कम से कम समस्या का सामना करने का प्रयत्न तो हुआ। और तीसरे दृश्य में नारी सिर्फ निर्णयात्मक भूमिका निभाती है वह अपने हित में फैसला करती है

चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो पर अस्तित्व की मर्यादा भंग न होने पाए । लेखिका अपने इस उद्देश्य में जितनी सफल है उतना ही उनका कथा साहित्य उत्कृष्ट है । नारी संवेदना संबंधी समस्त तन्तुओं का ताना-बाना बड़े ही कौशल के साथ, लेखिका ने बुना है जो निश्चित रूप से नारी की स्वतंत्रता एवं उसकी मुक्ति का हलफनामा है।

5 ममता कालिया के कथा साहित्य में स्त्री संवेदना-.

स्वातंत्रोत्तर कथा साहित्य में ममता कालिया का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म-2 नवम्बर 1940 को वृन्दावन में हुआ था। लेखिका के पिता-श्री विधाभूषण अग्रवाल आकाशवाणी में केन्द्र निदेशक थे । उनके तबादले के कारण ममता की शिक्षा नागपुर, मुम्बई, पुणे, इन्दौर और दिल्ली के स्कूलों में सम्पन्न हुई । ममता कालिया अंग्रेजी साहित्य में इलाहाबाद विश्वविधालय से एम०ए०उत्तीर्ण किया। लेखिका के रूप में ममता कालिया का साहित्य में पदार्पण । सन्-1960 से निरंतर चल रहा है । इन्होंने कविता कहानी उपन्यास, नाटक के अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में महिलाओं की संवेदना पर लेखन, सर्जन करती रहती है । इनकी कहानियाँ देश एवं विदेश के तमाम विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम के रूप में अध्ययन हेतु सम्मिलित है।

रचनाएँ-

कहानी संग्रह- (i) छुटकारा, (ii) सीट नम्बर छः

(iii) जाँच अभी जारी (iv) चर्चित कहानियाँ

उपन्यास- (i) बेघर (ii) एक पत्नी के नोट्स

(iii) नरक दर नरक

बेघर उपन्यास में नारी संवेदना-

स्वातंत्रोत्तर महिला कथा साहित्य की स्त्री संवेदना परक लेखिका ममता कालिया जी का यह उपन्यास नारी के कौमार्य की विषयवस्तु को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। शील की मर्यादा के प्रति पुरुष समाज की रूढ़िवादी मानसिकता एवं अमानवीय, अवैज्ञानिक धारणाओं पूर लेखिका ने कुठाराघात किया है। हिन्दी उपन्यास पुर्नपरिभाषा के जिस बिन्दु पर आ पहुँचा है वहीं से आलोच्य उपन्यास की कथा आरंभ होती है।मैट्रो सीटी में जीवन यापन करते हुए युवा वर्ग के संघर्षों, सफलताओं एवं उनके अन्तः सम्बन्धों को उजागर करता हुआ यह उपन्यास स्त्री संवेदना के विविध आयामों का दस्तावेज सिद्ध हुआ है।

'बेघर' उपन्यास का कथनायक 'परमजीत' सुन्दर था । उसको देखकर ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि पंजाबी नौजवान ही होगा। परमजीत और कथानायिका संजीवनी एक दूसरे से अकस्मात मिलते हैं, मिलन की लगातार पुनरावृति ने इन दोनों को शारीरिक संबंध की मर्यादा से आगे बहा ले गया। रजामंदी से उत्पन्न प्रेम 'परमजीत' और 'संजीवनी के मध्य यौन-संबंध जैसे रिश्ते को जन्म देता है। संजीवनी एवं परमजीत का शारीरिक संबंध एक नए 'सवाल को जन्म देता है। यौनिक इच्छा की पूर्ति के पश्चात प्रेमी परमजीत को संस्पर्श होता है कि प्रेमिका असूयपृश्या नहीं है । नायिका का असूयपृश्या न होना नायक के पुरुषवादी अहं भाव की जागृति का कारण होता है यहीं एक प्रेमी के रूप को त्यागकर परमजीत एक रुढ़िवादी, पुरुषवादी बिचारधारा के वशीभूत हो जाता है। वह प्रेमी के जगह पुरुष के अहं को स्वीकार करते हुए नायिका का दामन छोड़ देता है। कौमार्य के मिथक की मार सहती नायिका वापस अपने सूनेपन में ही सिमट कर रह जाती है। इसके पश्चात् परमजीत भारतीय रीति-रिवाज के साथ दूसरी लड़की (रमा) से विवाह कर लेता है। इस दफ़ा उसे तकनीकी रूप से विशुद्ध कुँवारी लड़की मिल जाती है जो पारंपरिक रूप

से घर-गृहस्थी में दक्ष है किन्तु 'रमा' अपनी मानसिकता और दैनांदिक जीवन शैली में इतनी जड़ होती है कि कथानायक उसे अपने में नहीं उतार पाता। वह स्वयं संवेदनात्मक, भावात्मक एवं दैहिक धरातल पर एकांकी होता चला जाता है। यह अकेलापन एवं निर्जनता उसकी असमय मृत्यु के क्राइसिस पर समाप्त होता है।

नारी की सांवेदिक हत्या का अभिशाप रूढ़िवादी विचारधारा से ग्रस्त नायक के पतन का कारण बनता है लोक में प्रचलित उक्ति यहाँ ध्यातव्य है- "पूरा छोड़ जो आधे को धावै, पूरा मिले न आधा पावै ।" 'परमजीत' 'संजीवनी के सर्वगुण सम्पन्नता को नकार कर केवल कौमार्य मिथक की रूढि के कारण परमजीत और संजीवनी दोनों बेघर होकर रह जाते है। स्त्री के कौमार्य को लेकर हमारे समाज में जो रूढ़ धारणाएं विद्यमान हैं उसके कारण आज भी स्त्री पुरुष के संबंधों में दरार पैदा हो रहा है। 'परमजीत 'संजीवनी' को केवल इसलिए छोड़ देता है क्योंकि परमजीत को "तकलीफ हुई बेहद तकलीफ। यह जानकर कि वह पहला नहीं' था। बदहवासी मिटते ही उसे बात पत्थर की तरह लगी । लड़कियों के कुवाँरेपन की पहचान, उसने चीख-पुकार और खून से संबंध की थी।"[36]

ममता कालिया का आलोच्य उपन्यास आज युवा पीढ़ी जो पढ़ी-लिखी है उसके मानसिक द्वंद्व रुढ़िवादी मानसिकता से ग्रस्त पुरुष की सत्ता पर प्रश्नवाचन चिह्न है। जैसा की उपन्यास की कथावस्तु से ही स्पष्ट है कि औरत हर जगह छली जा रही है, प्रेम की प्रगाढ़ता के बावजूद, संजीवनी केवल कौमार्य के मिथक के कारण हार जाती है तो दूसरी तरफ 'रमा' साँचे में न ढल पाने के कारण विधवा हो जाती है।

एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में स्त्री संवेदना-

ममता कालिया नें जहाँ 'बेघर' उपन्यास में नारी के यौन-शुचिता संबंधी प्रश्न के माध्यम से नारी की संवेदना एवं शिकन सम्बन्धी छटपटाहट को व्याख्यायित

किया है वहीं दूसरी तरफ 'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास के माध्यम से पति एवं पत्नी के वैवाहिक जीवन को पुनर्निरीक्षण करने की कोशिश की हैं।

आलोच्य उपन्यास में लेखिका पति-पत्नी के दाम्पत्य संबंधो को पुनर्निरीक्षण करते हुए कथा नायिका के माध्यम से यह सवाल उठाती हैं कि क्या औरत-मर्द के बीच संबंध की प्रगाढ़ता एवं रिश्ते का कसाव सिर्फ यौनिक इच्छा की पूर्ति पर ही आधारित है। उसमें उनके विचारों, आवेगों एवं संवेदनाओं का कोई महत्व नहीं है। लेखिका पुरुषवादी विचारधारा के सामने यह प्रश्न उठाती है कि, क्या स्त्री के सौंदर्य का आकर्षण समाप्त होते ही पति-पत्नी के रिश्तों का कसाव समाप्त हो जाता है ? क्या आन्तरिक संवेदना और सच्चे प्रेम का कोई मूल्य नहीं है ? औरत, मर्द की सौंदर्य लिप्सा की संतुष्टि के लिए अपनी पूरी शक्ति और मेघा का हनन करती रहेगी ताकि उसका पति उसके अलावा अन्य किसी दूसरी औरत से संबंध स्थापित ना करे

इसप्रकार लेखिका औरत-मर्द के जिस्मानी, रिश्तों से ऊपर उठकर उनके मध्य भावनात्मक एवं अंतरंग प्रेम की परिकल्पना करती हैं । आलोच्य उपन्यास में सेक्स की आपूर्ति ही पति-पत्नी के मध्य संबंधो को बाँधने में साधक न हो वरन् आपसी तालमेल और संवेदनात्मक लगनशीलता का भी महत्वपूर्ण योगदान सम्मिलित हो की परिकल्पना हैं ।

<u>ममता कालिया की कहानियों में स्त्री संवेदना-</u>

ममता कालिया का उपन्यास साहित्य स्त्री संवेदना को लेकर जितना समृद्ध है उतनी ही संवेदनशील उनकी कहानियों की विषय-वस्तु हैं । नारी मुक्ति और नारी के पक्ष में जितने निर्णय होने चाहिए वे सब उनके कहानी संग्रह के प्रमुख कहानियों में दृष्टिगोचर होते है ।

पीली लड़की :-

'पीली लड़की' कहानी में लेखिका ने एक ऐसी नारी के जीवन सत्य को ऊजागर किया है जो प्रेम विवाह करती है फिर भी छली जाती है। कहने का अर्थ यह की औरत चाहे परंपरित विवाह करे या फिर अपने पसंद से साथी चुने, दोनो ही परिस्थिति में काँटे उसी के दामन में चुभते हैं। जीवन के इस यथार्थ को व्यक्त करने के लिए ममता जी ने 'सोना' को माध्यम' बनाया है जो एक प्राध्यापक की पत्नी है। सोना अपनी पसंद से प्रेम विवाह करती है किन्तु जो पति शादी से पहले उसकी हर बात मानता था अब वह उसे अपनी गुलाम समझता है। सोना पढ़ी-लिखी है लेकिन उसे किसी भी वाद-संवाद में भाग लेने का अधिकार नही है। एक बार पति की आज्ञा का उलंघन कर 'सोना' ने बहस में प्रतिभाग किया। किसी ने पूछा भारत में लोकतंत्र सफल है या असफल ? सोनाने हँसते हुए कहा- "यह सवाल ही सिध्ध करता है कि प्रजातंत्र है और सफल है।" 37 तब पति ने उसकी तरफ झुककर तीन शब्दों का संक्षिप्त वाक्य कहा और सोना सहसा चुप और बेजान पड़ गई। शादी के उपरांत सोना पति के लिए महत्वहीन हो गयी हूँ। अब कैसा साथ है सुबह उठकर अखबार में मुँह गाड़े-गाड़े चाय फिर कॉलेज की आपा थापी में लेटर पढ़ते हुए खाना, फिर घूमना, रात को लेक्चरों की तैयारी |

सोना की बातें आधुनिक विचारधारा से युक्त अंग्रेजी की प्राध्यापिक को आश्चर्य में डाल देती हैं। वह औरत-मर्द में समानता चाहती है। यहाँ तक की अगर कहीं माध्यम के रूप में उसका प्रयोग हो रहा हो तब भी वह तलाक चाहती है। इस प्रकार उपरोक्त दोनों स्त्रियों भारतीय स्त्रियों के जातीय समुह की भिन्न-भिन्न मानसिकता का नेतृत्व करती है । भारतीय नारियों की संवेदना लज्जा युक्त है इसीलिए रिश्तों में अभी कसाव कायम है जिस कालखण्ड में वह अपने लज्जाशीलता

के चिल्मन से बाहर देखना प्रारंभ कर देगी वहीं से रिश्तों की मर्यादा भंग होना प्रारंभ हो जायेगा ।

'पीली लड़की', 'माँ', 'बातचीत बेकार है' आदि कहानियों में ममता कालिया ने नारी जाति की संवेदना एवं शिकन को यथार्थ रूप से चित्रित किया है। आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई 'माँ' कहानी में लेखिका ने अधुनातन पीढ़ी की दृष्टि से सास-बहू के संबंधो को रेखांकित किया है। माँ को उसकी सास किस प्रकार दण्डित करती है उस मंजर को लड़की ने स्वयं देखा है और अपनी सांवेदिक दृष्टि से सास-बहू के मध्य उस द्वंद्वात्मक कार्य व्यापार का मूल्यांकन आधुनिक विचार से करती है। दादी; माँ को जो कष्ट देती है उसे उस लड़की ने स्वयं अनुभूत किया है- "दादी के राज्य में माँ का सारा संघर्ष रोटी से शुरू होता है और रोटी पे जाकर टूटता है। किसी दिन दादी प्रसन्न हो गई गयी तो माँ को एक रोटी ज्यादा मिल गई, खरबूजे की एक पतली सी फांक या बालों में लगाने का तेल । अन्यथा सुबह-शाम माँ की खुराक थी, मेहनत और अपमान"[38]

लेखिका का मन्तव्य है कि औरत को संघर्षपूर्ण जीवन केवल मर्दो के कारण ही नही जीना पड़ता कुछ औरतें भी हैं जो औरत की दुश्मन हैं। "माँ" कहानी की विषयवस्तु इस यथार्थ को उद्घाटित करती है कि स्त्री को पुरुष अपने अहंकारी स्वभाव के कारण प्रताड़ित करता है तो वहीं औरत को औरत परंपरावादी कुत्सित मानसिकता के जमाव के कारण संघर्ष करने पर मजबूर करती है।

6) मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में स्त्री संवेदना

आधुनिक युग में नए कथाकारों की जिस पीढ़ी ने इस साहित्य सृजन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है उनमें मृणाल पाण्डेय का भी नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। औरत के हक में कठोर से कठोर निर्णय लेने में मृणाल पाण्डे

का कथासाहित्य अग्रगणी सिद्ध हुआ है। लेखिका समाज और संगठन से ऊपर उठ संवेदना को महत्व देती है। वह स्त्रीत्व के साथ कोई समझौता करने के पक्ष में नही दिखाई पड़ती। स्वत्व से बड़ा कोई वस्तु नहीं ऐसा इनके कथा साहित्य का अध्ययन करने पर द्रष्टव्य होता है।

मृणाल पाण्डेय का संक्षिप्त परिचय-

लेखिका का जन्म मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ में 26 फरवरी, 1946 को हुआ। इनकी माँ जानी-मानी उपन्यासकार एवं लेखिका 'शिवानी' जी थीं उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा नैनीताल में पूरी की उसके बाद इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम०ए०किया 21 वर्ष की अवस्था में उनकी पहली कहानी हिन्दी साप्ताहिक 'धर्मयुग' में छपी। तब से वो लगातार लेखन कर रही हैं। समाज सेवा में उनकी गहरी रुचि हैं।

<u>प्रमुख रचनाएँ-</u>

कहानियाँ- (i) यानी की एक बात थी (ii) दरम्यान

(iii) एक शब्द बेधी (iv) एक नीच ट्रेजेडी

(v) एक स्त्री का विदा गीत (1) चार दिन की जवानी हेवी

उपन्यास - (i) विरुद्ध (ii) अपनी गवाही (ii) पटरंगपुर पुराण

(iv) सहेला रे

मृणाल पाण्डे का स्त्री संवेदना परक चिन्तन-

स्वतंत्रता के बाद की 'महिला कथाकारों में मृणाल पाण्डेय की पहचान एक ऐसी कथाकार के रूप में हुआ है जो नारी-विमर्श से जुड़े ऐसे तथ्य समाज के सामने प्रस्तुत किये जो बेहद जरूरी और स्त्री के अधिकार की रक्षा हेतु अत्यन्त जायज भी है। लेखिका की रचनाधर्मिता की बड़ी विशेषता यह है कि वह सत्य का अन्वेषण एक

पत्रकार के रूप में करती हैं और अपनी भावना का पुट देकर कथा-साहित्य का सृजन करती हैं। यही कारण है कि औरत के पक्ष में उनकी दृष्टि बिल्कुल सजग प्रहरी की भाँति है। उनके कथा-साहित्य एवं स्त्री-विमर्श परक पुस्तकों में यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि, औरत कहाँ-कहाँ प्रताड़ना और छलावे का शिकार हो रही है। लेखिका के लेखन शैली में जरा भी संकोच का भाव नही दिखाई पड़ता। वह औरत की समस्या और संघर्ष दोनो पर खुलकर लेखनी चलाती है। इनके कथा साहित्य में पितृसत्ता और आर्थिक स्वतंत्रता को साथ लैंगिक समानता के प्रश्न को पुरजोर से उठाया गया है 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक से ही स्त्री शोषण एवं उत्पीड़न को लेकर बहुत कुछ लिखा गया है। स्त्री-संवेदना परक लेखन से बहुत सवाल सामने आते हैं। स्त्री-विमर्श के द्वारा उन कारणों की गहरी छानवीन होनी चाहिए, जो स्त्री समाज के हक में नहीं है। समाज में औरत-मर्द के बीच असंतुलन है। इस संबंध में मृणाल पाण्डेय का कथन उद्धृत है- "नारी स्वतंत्रता के समर्थकों की इच्छा यही है कि स्त्री के अस्तित्व को उसके पुरुष से जुड़े संबंधों तक सीमित करके न देखा जाय और जन्मजात उसे अनुचरी नहीं सच्चे अर्थों में सहचरी के रूप में प्रेरित, परिभाषित और प्रोत्साहित किया जाय। मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में स्त्रियाँ कई रूपों में सामने आती हैं। इनके कथा साहित्य मे एक ओर पितृसत्तात्मक समाज के बंधनो से अत्यन्त पीड़ित स्त्री चरित्र है और वहीं

चरित भी दूसरी तरफ पितृसतात्मक बंधनों से मुक्त स्त्री चरित जो समाज से बेखबर अपने आप में मस्त दिखाई देती हैं।"39

पितृसत्तात्मक व्यवस्था का अभिज्ञान परक बोध

स्त्री-संवेदना का मूल स्वर प्रतिशोधात्मक नहीं है। यह नारी की मुक्ति की कामना, बराबरी का हक, सामाजिक न्याय, स्वत्वबोध एवं अस्मिता की ही आवाज है।

नारी चिंतन यह मानकर चलता है कि औरत की अस्मिता एवं संवेदना के विपक्ष में खड़े होने के लिए जिम्मेदार पुरुष नहीं है। अपितु पितृसत्तात्मक सिद्धांतों पर आधारित वह व्यवस्था है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी उनके दिलो-दिमाग पर जन्म से लेकर मृत्यु तक यह पाठ पढ़ाती आई है कि औरत, मर्द से हीन, अबला और कमजोर है, पुरुषों के भोग का मात्र साधन है। मृणाल पाण्डे ने 'प्रतिशोध', 'हमसफर', 'रिक्ति', और 'कर्कशा' जैसी कहानियां लिखी हैं। जिनकी स्त्री चरित्र पितृसत्तात्मक भारतीय समाज की मानसिकता से उपेक्षित होकर जीवन यापन करती हुई अंकित है।

मृणाल पाण्डेय अपने लेख 'स्त्री-शिक्षा की अंधेरी भूलभूलैया' शीर्षक के अंतर्गत लिखती हैं कि- "आज़ादी के इतने वर्षो बाद भी हमारे देश में पढ़ी-लिखी औरतों का 25 प्रतिशत तक भी नहीं पहुँच सका है। लोकतंत्र में चूँकि स्त्री को भी एक स्वतंत्र नागरिक का वही अहम दर्जा मिलता है, जो पुरुष को, तो शिक्षा के क्षेत्र में सदियों से स्त्री-पुरुष के बीच असमानता क्यो ? 'स्त्रियों को पढ़ाने - लिखाने की जरूरत की बात तो हर बार रेखांकित की गयी परंतु समाज के पितृसत्तात्मक पारिवारिक-सामाजिक ढाँचे से स्त्री की अशिक्षा को जोड़कर समाज की कार्यशैली में स्त्री को शक्ति सम्पन्नता बख्सने वाले कोई नये क्रान्तिकारी कदम नहीं उठाये गये। स्त्री को पढ़ाना जरूरी माना गया पर महज इसलिए कि वह बेहतर माँ बनकर बेहतर बच्चे पालेगी वह घर के बाहर काम करके परिवार की आय और उसके जीवन स्तर को बेहतर बनाएगी।"[40]

लेखिका की पैनी नजर इस बात पर बिल्कुल तटस्थ है कि पितृसत्तात्मक सोच हमेशा से औरत को दोयम दर्जे की वस्तु मात्र समझती आ रही है। वे समाज के सामने प्रश्न उठाती हैं कि, आज भी हमारी सोसायटी में लड़को को ज्यादा महत्व एवं सामाजिक अधिकार क्यों' प्राप्त हैं ? पिता की सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार क्यों नहीं हैं ? यदि कहीं कुछ अधिकार कानूनन प्राप्त भी हैं तो यदि लड़की उसे लेना चाहे

तो पारिवारिक रिश्तों के कोप का भाजन क्यों होना पड़ता है । पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने पुरुष को परिवार और समाज का मुखिया बनाया और स्त्री शोषिता के रूप में अपना शोषण कराती रही यथार्थतः पिता की सम्पत्ति में उसको कोई अधिकार नहीं मिला। उसकी कोई अपनी निजी सम्पत्ति नहीं है। वह खुद दूसरों की सम्पत्ति बनकर रह गयी है। बकौल 'मृणाल पाण्डे- "इन सब के मालिक पुरुष हैं, क्या मतलब है आपका? विवाहिता स्त्रियों का परिवार की भू-सम्पत्ति में अपने भाईयों की ही तरह अधिकार होना चाहिए। पुणे के प्रख्यात गोखले इंस्टीट्यूट के निर्देशक चिड़चिड़ाकर मुझसे पूछते हैं, स्त्रियाँ तो विवाह करके ससुराल चली जाती हैं, जमीन हम उन्हें कैसे दे देंगें।"41 'देवी' उपन्यास का यह दृश्य इस बात का प्रमाण है कि कैसे लेखिका समाज में फैली रूढ़िवादी सोच का पर्दाफाँस करती है। एक तरफ पुरुष पितृसत्त का सहारा लेकर खानदानी जमीन में स्त्री का मालिकाना हक अस्वीकार करता है तो दूसरी तरफ औरत अपने हक की प्राप्ति हेतु माँ के सामने गुहार लगाते हुए कहती है- "अम्मा जमीन के लिए ही तो हम मरी जा रही हैं, 'क्योंकि पाँच बच्चों और एक पति को पालना- पोसना उसी की जिम्मेदारी है। खरीफ के मौसम में जब धान के खेत में काम रहता है तब 'गोबिन्दम्मा' दस रुपए रोज कमाती है, सूखा पड़ रहा है तो काम नहीं मिलता तब वे भूखों मरते काम का इंतजार करते हैं।"[42]

आलोच्य उपन्यास में बड़ी ही संवेदनशीलता से इस प्रश्न को हृदय परिवर्तन की विषयवस्तु से जोड़ा गया है कि कैसे पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा न पाने के कारण एक बेटी भूखों मर रही है। मृणाल पाण्डे की रचना धर्मिता की यह एक बड़ी विशेषता है कि जहाँ पर हक और कानून अपना कार्य न कर पाएं वहाँ उनकी संवेदनशीलता भरी रचनाशैली पाठक का हृदय परिवर्तन करके अभिष्ट उद्देश्य की पूर्ति कराता है | यह भारतीय स्वातंत्रोत्तर समाज की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि, वह परंपरा से

चले आ रहे पुरुष-प्रधान मान्यताओं का खण्डन नहीं कर सकता यदि कोई पुरुष खंडन करना भी चाहे तो नहीं कर पाता कारण कि उसकी शाख, मर्यादा, प्रतिष्ठा खतरे में पड़ जाती है। औरतों पर हुकुम चलाने की प्रथा इतनी प्राचीन है कि इसे इतनी आसानी से बदला नही जा सकता। 'ओ उब्बेरी' कहानी में मृणाल पाण्डे लिखती है कि- "पुरुष सोचते हैं कि स्त्रियाँ निकृष्ट कोटि की प्राणी हैं। दरअसल पुरुष सदियों से हुकुम चलाते रहे, औरते खटती रही हैं। इस पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष के लिए स्त्रियों के प्रति नरमी दिखाना समाज में उपहास की बात बन जाती है, यदि कोई पुरुष महिलाओं के प्रति दयालु हो भी तो मर्द उसका मजाक उड़ाते हैं कि वह तो पुरुष वेश में औरत है। यदि सरपंच पुरुष हुआ तो वह महिलाओं से मशविरा करने में अपनी हेठी समझता है महिला निर्वाचित होकर भी आई हो तो उसकी ओट में असल फैंसले पुरुष ही करना चाहते हैं।"[43]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पुरुष-प्रधान समाज में औरत के लिए जो सामाजिक व्यवस्था बनाई गई है वह नारी के स्वत्व के विकास में बाधा उत्पन्न करती है। इस मजाजी खुदाओं के शासन से शासित समाज में स्त्री अपनी स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए निरंतर संघर्ष करे। मृणाल पाण्डे का स्त्री-मन स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व के लिए स्त्री से अपेक्षा करती है कि स्त्री पितृसत्ता के द्वारा बनाए गये कानून-कायदे और परंपरागत रूढ़िवादी मान्यताओं का विरोध कर अपनी अलग पहचान बनाए। लेखिका की स्त्री के प्रति अवधारणा है कि उसको पुरुषों के सदृश अधिकार प्राप्त हों और स्त्री के प्रति समाज में जो मान्यता है कि वह पुरुषों से कमतर है उस सोच को बदलना होगा तभी स्त्री जाति के साथ-साथ समाज की भी उन्नति होगी।

आर्थिक आत्मनिर्भरता-

आधुनिक समाज के लिए नारी-मुक्ति कोई अदृश्य या काल्पनिक अवधारणा नहीं है बल्कि एक यथार्थवादी और स्थायी अवधारणा है। नारी - मुक्ति हेतु उसकी आर्थिक स्वतंत्रता आवश्यक है। औरत का स्थान घर के अन्दर और पुरुष का घर के बाहर यह धारणा अब भी समाज में व्याप्त है। लोग मानते हैं कि पुरुषों की तुलना में स्त्रीयों में कम कार्य क्षमता होती है। वे घर के बाहर के कार्य इतनी कुशलता से नहीं कर सकती जितनी कुशलता एवं सहजता से पुरुष कर सकता है। जबकि महिला घर के अंदर के तमाम अनुत्पादक कार्य बड़ी मेहनत से करती रहती है। अब धीरे-धीरे इस धारणा में बदलाव आ रहा है जो स्त्री-मुक्ति की दिशा में अच्छा संकेत है। औरत घर के अन्दर खटती रहती है किन्तु उसके द्वारा किए गये श्रम का कोई मूल्य नहीं है। वह रात-दिन मूल्यहीन श्रम करती है। घर के भीतर किये गये श्रम का कोई वेतन नही है अत: आर्थिक विपन्नता उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को निराशा, हताशा और अंधकार की गुफा में ढकेल देता है। आज की युवा पीढ़ी को यह समझने की आवश्यकता है कि यदि औरत आर्थिक रूप से स्वतंत्र होगी तो उसके ही परिवार का सामाजिक स्तर सुलझेगा।

मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में चित्रित ऐसी स्त्री चरित्र भी दिखाई देती है जो आर्थिक कठिनाईयों से विवश होकर पुरुष की काम चेष्टाओं से छली जाती है और चाहते हुए भी प्रतिकार नहीं कर पाती है। "दुनिया में पुरुष और स्त्री के बीच संतुलन बिगड़ा हुआ है। स्त्री का पलड़ा तमाम जिम्मेदारियों के बोझ से नीचे झुका दिया गया है जबकि पुरुष का पलड़ा ऊपर रखा गया है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों का मानना है कि यद्यपि देश में किए जाने वाले काम का कुल दो तिहाई भाग औरतें करती हैं और स्त्री-मजदूरों का वेतन पुरुषों से कम है।"[49] लेखिका अपने कथा साहित्य और स्त्री

विमर्शपरक पुस्तकों में नारी के उत्थान में बाधक उन सभी तत्वों एवं प्रश्नों को उठाया है जो औरत की स्वतंत्रता में बाधक है। उदाहरण स्वरूप शिक्षा में समानता, आर्थिक स्वतंत्रता, पैतृक सम्पत्ति में असमानता, लैंगिक विभेद, औरत अस्मिता की खोज, प्रताड़ना का पारंपारिक व्यवस्था आदि। अतः यह सर्वविदित है कि मृणाल पाण्डे स्वातंत्रोत्तर महिला कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति की महान् लेखिका एवं कुशल साहित्यकार हैं।

निष्कर्ष-

स्वातंत्रोत्तर महिला कथाकारों के कथा-साहित्य का विहंगावलोकन करने से ज्ञात होता है कि आलोच्य युग की सभी महिला लेखिकाओं के कथा- साहित्य में स्त्री-संवेदना एवं स्त्री-विमर्शों से जुड़े प्रश्न बहुतायत मात्रा में उठाए गये हैं। स्त्री अस्मिता की रक्षा और नारी-मुक्ति का उत्थान कमोवेश सभी रचनाकारों के रचनाधर्मिता का मुख्य उद्देश्य रहा है। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक समानता का अधिकार हो या फिर पैतृक सम्पत्ति में हिस्सेदारी सब में आज की स्त्री समानता चाहती है। इस युग की तमाम लेखिकाओं के कथा साहित्य का मूल्यांकन करने से यह ज्ञात हुआ है कि औरत, पुरुष से विरोध नहीं करना चाहती, उसका विरोध पुरुषवादी विचारधारा से है। कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, मृणाल पाण्डे, प्रभाखेतान, राजी सेठ, क्षमा शर्मा, नासिरा शर्मा इत्यादि सभी लेखिकाओं की दृष्टि में औरत और मर्द दोनो इस समाज की सम्पूर्णता के प्रमुख आयाम हैं। किसी एक की उन्नति सम्पूर्ण समाज के उत्कर्ष के स्वप्न को पूरा नहीं कर सकता कारण की स्त्री - पुरुष एक चने की दो दाले हैं एक भाग के बिना साबूत चने की परिकल्पना ही बेतुका है। वैसे ही किसी एक की अवनति समाज के सम्पूर्ण उत्कर्ष में बाधक है। नारी स्वतंत्रता एवं उसके मुक्ति का प्रश्न ही सही मायने में

वाजिब नहीं है कारण की नारी के बिना नर की कल्पना करना ही रेत से पुल बनाने जैसा है, अतः जितना महत्व पुरुष का समाज में है उतना ही महत्व स्त्री का भी है। फिर स्वतन्त्रता और मुक्ति देने और लेने का विषय ही कहाँ रहा। बस हमारा सांस्कृतिक, पारंपरिक सामाजिक ढाँचा ही ऐसा रहा है कि ऐसी कुत्सित मान्यताएँ पनप गई। कुछ पाश्चात्य विचारधारा एवं संस्कृति की नकल से तो कुछ अशिक्षा और अव्यवहारिक सामाजिक बनावट से। इसी कारण आज हमारी महिला कथाकारों को नारी-मुक्ति की कामना हेतु साहित्य के माध्यम से आवाज उठानी पड़ रही है।

संक्षेप में कहें तो स्वातंत्रोत्तर महिला कथाकारों की दृष्टि केवल इस धारणा को बदलना चाहती है जो औरत-मर्द में असमानता उत्पन्न करती हो। चाहे वह श्रम, शिक्षा, सम्पत्ति, निर्णय एवं आर्थिक स्वतंत्रता ही क्यों न हो।

संदर्भ सूची

1- वर्मा महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ - 26

2- निशा देवी, कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में नारी चेतना, पृष्ठ-2

3- कृष्णा सोबती, मित्रों मरजानी, पृष्ठ-35

4- वही, पृष्ठ-49

5- क्षमा शर्मा, स्त्रीवादी विमर्श: समाज और साहित्य, पृष्ठ-129

6- अरविन्द जैन, औरत: अस्तित्व और अस्मिता, पृष्ठ-36

7- कृष्णा सोबती, ए लड़की, पृष्ठ-13

8- वही, पृष्ठ - 61

9- कृष्णा सोबती, दिलोदानिश, पृष्ठ-56

10-वही, पृष्ठ-171

11-वही, पृष्ठ - 175

12-क्षमा शर्मा, स्त्रीवादी विमर्श: समाज और साहित्य, पृष्ठ-134

13-कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी, पृष्ठ-71

14-गुलाब राय हाड़े, मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य, पृष्ठ-168

15-वही, पृष्ठ-169

16-डॉ० सुशील वर्मा, आधुनिक समाज की नारी चेतना, पृष्ठ-147

17-मनू भण्डारी, मैं हार गई (ईशा के घर इंसान), पृष्ठ-10

18-मन्नू भण्डारी, त्रिशंकु, पृष्ठ-112

19-सं.-डॉ.एम.फिरोज अहमद, वाङमय,(त्रैमासिक), जुलाई-दिसम्बर-2007,पृष्ठ-65

20-मधुरेश, अक्षर पर्व, जून-2009, पृष्ठ-54

21-वही, पृष्ठ-54

22-डॉ. गुरचरण सिंह, समकालीन कथाकार और नई कथा कृतियां, पृष्ठ - 56

23-मृदुला गर्ग, अनित्य, पृष्ठ-235

24- रोहिणी अग्रवाल, समकालीन कथा साहित्य सरहदें और सरोकार, पृष्ठ-143

25- मृदुला गर्ग, चितकोबरा, पृष्ठ - 89

26- वही, पृष्ठ- 138

27- वही, पृष्ठ-163

28- राजेंद्र यादव, हंस, मार्च-2001, मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै) पृष्ठ-224

29- राजेंद्र यादव, हंस, नबम्बर - 2010, मैत्रेयी पुष्पा (चर्चा हमारा) पृष्ठ- 70,

30- बच्चा सिंह, खास महिलाओं की खास कहानी, उत्तरा -अक्टूबर-
दिसम्बर- 2008, पृष्ठ - 22-23

31- मैत्रेयी पुष्पा, गुड़िया भीतर गुड़िया, पृष्ठ-338

32- अरविन्द जैन, औरत अस्तित्व और अस्मिता, पृष्ठ-142

33- राजेन्द्र यादव, नवम्बर-2010, शरद सिंह, स्त्री-विमर्श का सही रास्ता दिखाता है मैत्रेयी का साहित्य, पृष्ठ- 72

34- मैत्रेयी पुष्पा, चाक, पृष्ठ-314

35- मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा बहती रही, पृष्ठ-23

36- ममता कालिया, बेघर, पृष्ठ- 72

37- ममता कालिया, सीट नम्बर छः, पृष्ठ- 85

38- ममता कालिया, प्रतिदिन पृष्ठ - 103

39- सं.- डॉ. अहमद एम. फिरोज, वाङमय, जुलाई-दिसम्बर- 2007, डॉ. जगत सिंह विष्ट (स्त्री-विमर्श और मृणाल पाण्डे का कथा साहित्य) - पृष्ठ - 88

40- मृणाल पाण्डे, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, पृष्ठ -116

41- मृणाल पाण्डेय, देवी, (समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की) पृ. 164

42- वही, पृष्ठ-165

43- मृणाल पाण्डे, ओ उब्बेरी, पृष्ठ-164

44- मृणाल पाण्डे, देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, पृष्ठ-84